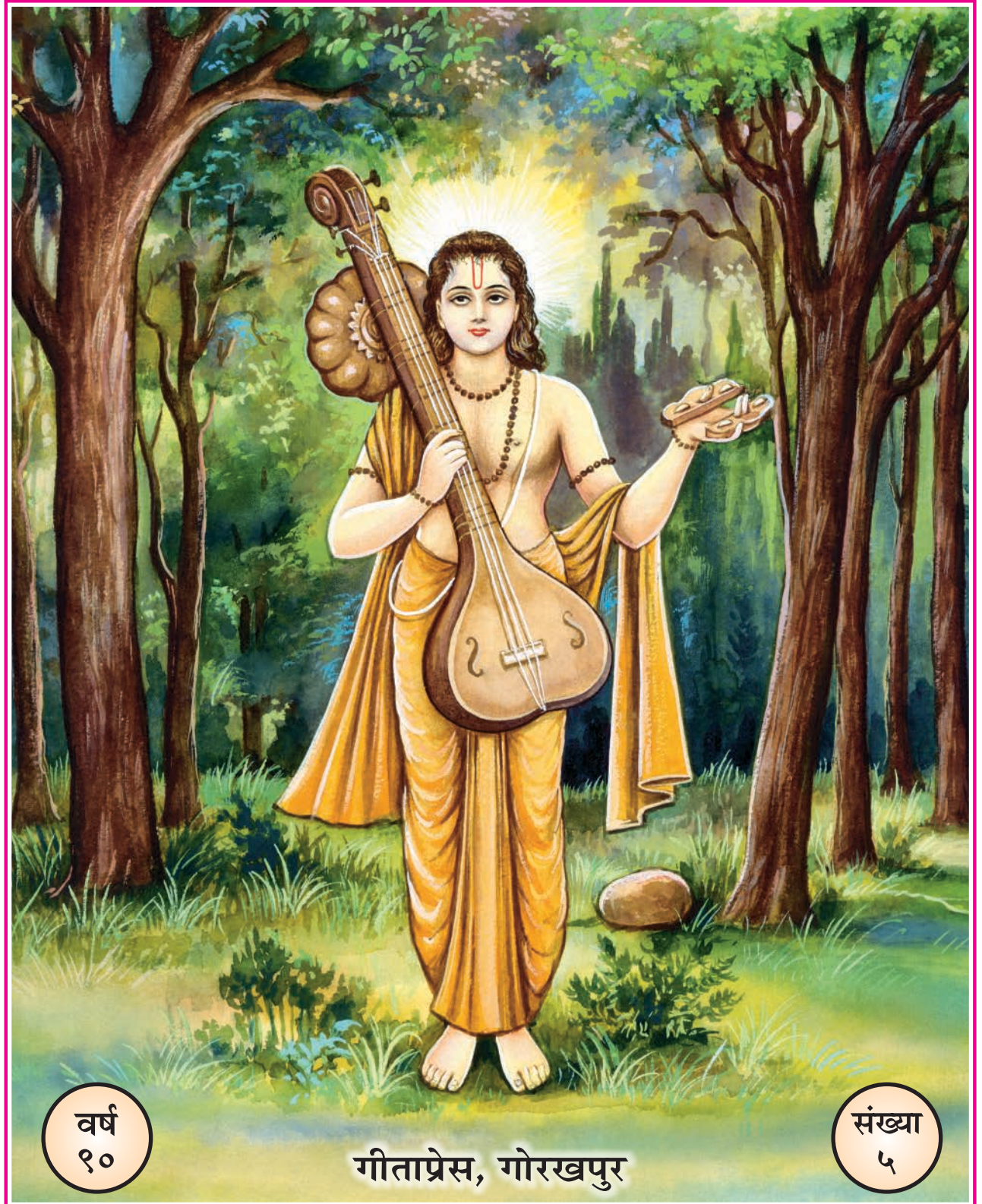


* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रूपये



वर्ष
१०

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
५

देवर्षि नारद



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



यशोदा मैयाका वात्सल्य-भरा शासन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः । नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते ॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः । सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्त्यै ॥

वर्ष
१०

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, मई २०१६ ई०

संख्या
५

पूर्ण संख्या १०७४

मैयाकी सीख

भूषन-बसन सजाय सबिधि मैया मुरली कर दीनी । कमलनैन ने कश्यौ कलेवा, चलिबै की मन कीनी ॥
मैया कह्यौ—‘लाल मेरे तुम बहुत दूर जिन जड़्यौ । साँढ साँप बीछिनि तें लाला दूर डरत ही रहियौ’ ॥
सूधे-से हामी भर, तुरतहि आँगन-बाहर भागे । कारौ नाग देखि, तहँ, तातें करन अचगरी लागे ॥
पाछे-पाछे आय रही ही मैया नेह भरानी । बिषधर भुजँग निकट लाला कौं देखत ही डरपानी ॥
दौरि हटकि धीरे तें नेह भरे मन लगी डरावन । कोमल अँगुरिन पकरि कान दहिनौ लागी धमकावन ॥
अचरज भरे डरे मन लाला अपराधी-से ठाढ़े । मैया च्यौं निरदोष मोय डरपावति सोचत गाढ़े ॥
लोकपाल काँपत जाके डर अखिल भुवनके स्वामी । डरपत लीला करत स्वयं वे भक्त-प्रेम-अनुगामी ॥
वत्सलता परिपूरित मैया-हिय कैसो सुचि पावन । देखत फन उठाय फनि निज लीला सुललित मनभावन ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २, १५, ०००)

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, मई २०१६ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- मैयाकी सीख.....	३	११- माँ [कविता] (श्रीरंधीरकुमारजी)	२०
२- कल्याण	५	१२- मानवताकी सफल योजना	
३- देवर्षि नारद [आवरणचित्र-परिचय]	६	(स्वामी श्रीनारदानन्दजी सरस्वती)	२१
४- भगवन्नाम-महिमा		१३- जीवनका सच्चा लाभ (श्रीबजरौरसिंहजी)	२४
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	१४- खतरनाक चोर	
५- कर्तव्यपालन भी आवश्यक		(गोलोकवासी महात्मा श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	२५
(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	९	१५- चौधरीजीका मायरा [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया)	
६- भजन कैसे करें ?		[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	२६
(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...	१२	१६- मेरा नहीं है, प्रभुका है, मेरे लिये नहीं है, प्रभुके लिये है	
७- नम्रताके व्यवहारसे पराभव नहीं होता		(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	२८
[नीतिकथा]	१५	१७- द्वार खोलो! [कहानी] (श्री 'चक्र')	३२
८- 'गावो विश्वस्य मातरः' (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर		१८- धर्मका स्वरूप (श्रीअमृतलालजी गुप्ता)	३७
एवं श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य		१९- साधक कमलाकान्त (श्रीरामलालजी)	३९
स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१६	२०- साधनोपयोगी पत्र	४३
९- जो धेनु आयी न होती [कविता]		२१- ब्रतोत्सव-पर्व [आषाढमासके व्रत-पर्व]	४५
(श्रीपारसनाथजी पाण्डेय)	१७	२२- कृपानुभूति	४६
१०- साधकोंके प्रति—		२३- पढ़ो, समझो और करो	४७
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१८	२४- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- देवर्षि नारद	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- यशोदा मैयाका वात्सल्य-भरा शासन	(")	मुख-पृष्ठ
३- बालिपर भगवत्कृपा	(इकरंगा)	१९
४- आदिकवि महर्षि वाल्मीकि	(")	२२

एकवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹२००

सजिल्द ₹२२०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }
सजिल्द शुल्क }

वार्षिक US\$ 45 (₹ 2700)

पंचवर्षीय US\$ 225 (₹ 13500)

{ Us Cheque Collection
Charges 6\$ Extra }

पंचवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹१०००

सजिल्द ₹११००

संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक — डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

☎ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क — भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—श्रीभगवान् परम आनन्द और परम शान्तिके समुद्र हैं। उन श्रीभगवान् के साथ तुम्हारा सम्बन्ध जितना ही बढ़ता जायगा, उतना ही आनन्द और शान्ति भी तुम्हारे अन्दर बढ़ते जायँगे। फिर तुम जहाँ भी जाओगे, आनन्द और शान्तिको साथ लेते जाओगे और तुम्हारे आनन्द तथा शान्तिसे जगत् के प्राणियोंको भी यथायोग्य आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होगी। साथ-ही-साथ तुम भी क्रमशः अधिक-से-अधिक आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति करते जाओगे; क्योंकि तुम्हारा हृदय हर समय, हर स्थानमें उनका आकर्षण करता रहेगा।

याद रखो—तुम्हारे हृदयका द्वार जिसके लिये खुला होता है, तुम्हें वही वस्तु मिलती है और जो वस्तु अन्दर होती है, उसीको अधिक पानेके लिये हृदयका द्वार भी खुला रहता है। तुम यदि आनन्द और शान्ति चाहते हो तो आनन्द और शान्तिके सागर भगवान् से सम्बन्ध जोड़ो, तुम्हारे हृदयमें आनन्द और शान्ति आयेगी और ज्यों-ज्यों वह जगत् में फैलेगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हारे अन्दर भी बढ़ती जायगी। तुम यदि भगवान् के सम्बन्धको भूलकर शोक और अशान्तिसे भरे विषय-वैभवसे सम्बन्ध जोड़ोगे तो तुम्हें आनन्द और शान्तिके बदले शोक और अशान्तिकी प्राप्ति होगी। फिर ज्यों-ज्यों तुम्हारा विषय-सम्बन्ध बढ़ता जायगा, त्यों-ही-त्यों शोक और अशान्ति भी बढ़ते जायँगे। फिर तुम जहाँ जाओगे, शोक और अशान्ति भी तुम्हारे साथ जायँगे और जगत् के प्राणियोंमें फैलकर बदलेमें तुम्हारे शोक और अशान्तिको और भी बढ़ा देंगे। तुम्हारे हृदयका दरवाजा आनन्द और शान्तिके लिये बन्द हो जायगा और तुम शोक तथा अशान्तिसे सन जाओगे। फिर जगत् की ऊँची-से-ऊँची किसी स्थितिमें भी तुम्हें आनन्द और शान्तिके यथार्थ दर्शन नहीं होंगे। इसलिये परम शान्ति और परमानन्दमय भगवान् के साथ सम्बन्ध जोड़ लो; फिर तुम जहाँ भी रहोगे—वहीं शान्ति और आनन्दको आकर्षित कर सकोगे और दूसरोंमें वितरण भी कर सकोगे।

याद रखो—उन मनुष्योंका संग करो, अधिक-से-अधिक समय उनके साथ रहने और उनके निकट होकर उनकी सेवा करनेमें बिताओ, जिनका हृदय परम शान्ति और परम आनन्दके समुद्र भगवान् में निमग्न है। उनके संगसे—अविरत संगसे तुम्हारे हृदयका भी भगवान् के साथ सम्बन्ध जुड़ जायगा। फिर तुम्हारे हृदयके द्वार भी परम आनन्द और परम शान्तिके लिये खुल जायँगे। ऐसे महापुरुष जगत् में सर्वत्र शान्ति और आनन्दका प्रवाह ही बहाया करते हैं; जहाँ शोक, अशान्ति, विषाद और भय होता है, वहाँ यदि उनकी हृदयस्थ शान्ति और आनन्दकी किरणें पहुँच जाती हैं तो वे शोक, अशान्ति आदिके अन्धकारका नाश करके आनन्द और शान्तिकी अत्युज्ज्वल चाँदनी फैला देती हैं।

आवरणचित्र-परिचय—

देवर्षि नारद

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ।

गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥

(श्रीमद्भा० १।६।३९)

श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियोंसे देवर्षि नारदकी महिमा बताते हुए कहते हैं—अहो! ये देवर्षि नारद धन्य हैं; क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ इस त्रितापतप्त जगत्को भी आनन्दित करते रहते हैं।

भगवद्भक्तिके प्रधान आचार्य परम भागवत देवर्षि नारदजीका उदात्त चरित जगत्के लिये परम आदर्श है। ये ज्ञानके स्वरूप, भक्तिके सागर, प्रेमके भण्डार, दयाके निधान, आनन्दकी राशि, सदाचारके आधार, सर्वभूतोंके सुहृद् तथा समस्त सद्गुणोंकी खान हैं। ये भागवत-धर्मके आचार्य, भक्तिशास्त्रके प्रवर्तक एवं स्वयं परम भागवत हैं।

देवर्षि नारद पहले गन्धर्व थे। एक बार ब्रह्माजीकी सभामें सभी देवता और गन्धर्व भगवन्नामका संकीर्तन करनेके लिये आये। नारदजी भी अपनी स्त्रियोंके साथ उस सभामें गये। भगवान्के संकीर्तनमें विनोद करते हुए देखकर ब्रह्माजीने इन्हें शूद्र होनेका शाप दे दिया। उस शापके प्रभावसे नारदजीका जन्म एक शूद्रकुलमें हुआ। जन्म लेनेके बाद ही इनके पिताकी मृत्यु हो गयी। इनकी माता दासीका कार्य करके इनका भरण-पोषण करने लगी। एक दिन इनके गाँवमें कुछ महात्मा आये और चातुर्मास्य बितानेके लिये वहीं ठहर गये। नारदजी बचपनसे ही अत्यन्त सुशील थे। वे खेलकूद छोड़कर उन साधुओं के पास ही बैठे रहते थे और उनकी छोटी-से-छोटी सेवा भी बड़े मनसे करते थे। सन्त-सभामें जब भगवत्कथा होती थी तो ये तन्मय होकर सुना करते थे। सन्तलोग इन्हें अपना बचा हुआ भोजन खानेके लिये देते थे।

साधुसेवा और सत्संग अमोघ फल प्रदान करनेवाला होता है। उसके प्रभावसे नारदजीका हृदय पवित्र हो गया और इनके समस्त पाप धुल गये। जाते समय महात्माओंने प्रसन्न होकर इन्हें भगवन्नामका जप एवं भगवान्के स्वप्नके ध्यानका उपदेश दिया।

काटनेसे इनकी माताजी भी इस संसारसे चल बसीं। अब नारदजी इस संसारमें अकेले रह गये। उस समय इनकी अवस्था मात्र पाँच वर्षकी थी। माताके वियोगको भी भगवान्‌का परम अनुग्रह मानकर ये अनाथोंके नाथ दीनानाथका भजन करनेके लिये चल पड़े। एक दिन जब नारदजी वनमें बैठकर भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान कर रहे थे, अचानक इनके हृदयमें भगवान्‌ प्रकट हो गये और थोड़ी देरतक अपने दिव्यस्वरूपकी झलक दिखाकर अन्तर्धान हो गये। भगवान्‌का दुबारा दर्शन करनेके लिये नारदजीके मनमें परम व्याकुलता पैदा हो गयी। वे बार-बार अपने मनको समेटकर भगवान्‌के ध्यानका प्रयास करने लगे, किंतु सफल नहीं हुए। उसी समय आकाशवाणी हुई—‘हे दासीपुत्र! अब इस जन्ममें फिर तुम्हें मेरा दर्शन नहीं होगा। अगले जन्ममें तुम मेरे पार्षदरूपमें मुझे पुनः प्राप्त करोगे।’

समय आनेपर नारदजीका पांचभौतिक शरीर छूट गया और कल्पके अन्तमें ये ब्रह्माजीके मानस पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। देवर्षि नारद भगवान्के भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। ये भगवान्की भक्ति और माहात्म्यके विस्तारके लिये अपनी वीणाकी मधुर तानपर भगवद्गुणोंका गान करते हुए निरन्तर विचरण किया करते हैं। इन्हें भगवान्का मन कहा गया है। इनके द्वारा प्रणीत भक्तिसूत्रमें भक्तिकी बड़ी ही सुन्दर व्याख्या है। अब भी ये प्रत्यक्षरूपसे भक्तोंकी सहायता करते रहते हैं। भक्त प्रह्लाद, भक्त अम्बरीष, ध्रुव आदि भक्तोंको उपदेश देकर इन्होंने ही भक्तिमार्गमें प्रवृत्त किया। इनकी समस्त लोकोंमें अबाधित गति है। इनका मंगलमय जीवन संसारके मंगलके लिये ही है। ये ज्ञानके स्वरूप, विद्याके भण्डार, आनन्दके सागर तथा सब भूतोंके अकारण प्रेमी और विश्वके सहज हितकारी हैं।

श्रीनारदजी व्यास, वाल्मीकि तथा महाज्ञानी
शुकदेवजीके गुरु रहे हैं। श्रीमद्भागवत तथा श्रीवाल्मीकि-
रामायण-जैसे उदात्त ग्रन्थ देवर्षि नारदकी कृपासे ही हमें

भगवन्नाम-महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्‌के नामकी महिमा अपार है, अपरिमित है । वाणीके द्वारा उसकी महिमा स्वयं भगवान् भी नहीं बतला सकते, तब दूसरा तो बतलायेगा ही क्या ? जैसे खेतमें बीज किसी भी प्रकारसे बोया जाय, उससे लाभ-ही-लाभ है, इसी प्रकार भगवान्‌के नामका जप किसी भी प्रकारसे किया जाय, उससे लाभ-ही-लाभ है । श्रीमद्भागवतमें बतलाया है—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।

वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥

पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः ।

हरिरित्यवशेनाह पुमान्नाहति यातनाम् ॥

(६।२।१४-१५)

‘महात्मा पुरुष यह बात जानते हैं कि चाहे पुत्रादिके संकेतसे हो, हँसीसे हो, स्तोभ (गीतके आलापके रूप)-से हो और अवहेलना या अवज्ञासे हो, वैकुण्ठभगवान्‌का नामोच्चारण सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है । जो मनुष्य ऊँचे स्थानसे गिरते समय, मार्गमें पैर फिसल जानेपर, अंग-भंग हो जानेपर, सर्पादिद्वारा डँसे जानेपर, ज्वरादिसे संतप्त होनेपर अथवा युद्धादिमें घायल होनेपर विवश होकर भी ‘हरि’ (इतना ही) कहता है, वह नरकादि किसी भी यातनाको नहीं प्राप्त होता ।’

फिर यदि नामका जप मनसे किया जाय तो उसकी बात ही क्या है ? क्योंकि मानसिक जपकी विशेष महिमा बतलायी गयी है । श्रीमनुजी कहते हैं—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।

उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥

(२।८५)

‘विधियज्ञ (होम)-से उच्चारण करके किया हुआ जपयज्ञ दस गुना श्रेष्ठ है और उपांशु सौ गुना श्रेष्ठ है तथा मानस-जप हजार गुना श्रेष्ठ है ।’

नामकी महिमा सभी युगोंमें है, किंतु इस कलिकालमें तो इसकी महिमा और भी विशेष है । श्रीवेदव्यासजीने कहा है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।

यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

(विष्णुपुराण ६।२।१७)

‘सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञ करनेसे, द्वापरमें पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें केवल श्रीकेशवके कीर्तनसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है ।’

नामका जप यदि ध्यानसहित किया जाय तो सारे विघ्नोंका नाश होकर आत्माका उद्धार हो जाता है । योगदर्शनमें कहा है—

तस्य वाचकः प्रणवः । (१।२७)

‘उस परमात्माका वाचक (नाम) ओंकार है ।’

तज्जपस्तदर्थभावनम् । (१।२८)

‘उसके नामका जप और उसके अर्थकी भावना यानी स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये ।’

‘ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।’ (१।२९)

‘ऐसा करनेसे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परमात्माकी प्राप्ति भी होती है ।’

गीतामें भगवान् कहते हैं—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

(८।१३)

‘जो पुरुष ‘ॐ’ इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त हो जाता है ।’

श्रीभगवान्‌के अनेक नाम हैं । उनमेंसे किसी भी नामका जप किसी भी कालमें, किसी भी निमित्तसे कैसे भी क्यों न किया जाय, वह परम कल्याण करनेवाला है । यदि भगवान्‌के नामका जप गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, अर्थ और भावको समझकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निष्कामभावसे किया जाय, तब तो तत्काल ही परमात्माकी

कर्तव्यपालन भी आवश्यक

(ब्रह्मलीन धर्मसम्प्रदाई स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

ब्रह्मतत्त्व-निरूपण परम कल्याणकारक है, किंतु परिस्थितिका सामना करना भी आवश्यक हो जाता है। अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा भी परिस्थितिके अनुसार अपने निर्गुण, निराकार, अलक्ष्य, अग्राह्य, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य रूपसे सगुण-साकार रूपमें अवतरित होकर जगत्का कल्याण करते हैं। जब सभी अनर्थोंके मूलभूत अधर्मकी निवृत्ति, परमकल्याणमूल धर्मका संस्थापन, प्राणियोंमें सद्भावना एवं विश्वकल्याणके लिये ही भगवान् नानाविध अवतार धारण करते हैं, तब भगवद्भक्तोंका भी यह परम कर्तव्य है कि अपने परमाराध्य भगवान्का अनुसरण करें। जिस देशमें, जिस जातिमें जन्म हो, उसके प्रति भी जीवका कुछ कर्तव्य होता है। खाना, पीना, सोना, रोना, सन्तान उत्पन्न करना तो पशु भी जानता है, पर मानव-जीवन केवल इतने ही भरके लिये नहीं है। उसका जन्म तो धर्मकी जय, अधर्मकी निवृत्ति एवं भगवत्प्राप्तिके लिये होता है। जो अपने वर्णाश्रमानुसार कर्तव्य कर्मका परित्यागकर केवल रामनाम रटा करता है, वह वस्तुतः भगवान्का प्रेमी नहीं, अपितु भगवान्का द्वेषी है; क्योंकि भगवान्का जन्म ही 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥' उक्तिके अनुसार अधर्मकी निवृत्ति, धर्मकी संस्थापना, सज्जनोंके परित्राण एवं असुरोंके आसुरी भावका विनाश करनेके लिये ही होता है। कहा भी है—'अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः। ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरेः।' भला भगवान्का अवतार ही जिस अपने परमप्रिय सनातन वैदिक धर्मके संस्थापनके लिये होता है, उस धर्मकी रक्षाके कार्यमें जो हाथ न बैठाये तो वह फिर भगवान्का भक्त कैसे कहला सकता है? कल्पना कीजिये कि

किसीको अपने मित्रका तार मिलता है कि 'मैं कल दो बजेकी गाड़ीसे आऊँगा, स्टेशनपर किसीको सुविधाके लिये भेज देना।' यदि इस तारको पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कि मेरे मित्रका तार आया, आज मेरे मित्रका तार आया—इस प्रकार रट लगाकर नाचने लगे, तारको सोनेकी चौकीपर रखकर उसकी गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजा करे, बाजे बजवाये और उत्सव मनाये, किंतु दो बजे मित्रको लेनेके लिये स्टेशनपर जाना है अथवा किसीको भेजना है, इस बातको भूल जाय और मित्र ठीक समयपर आकर किसी प्रकारकी सुविधाको न पाकर परेशान भटकता हुआ उसके यहाँ पहुँचे और उसके ताण्डव नृत्यसहित उत्सवको देखे तो क्या ऐसे मित्रको कोई अपना प्रेमी या भक्त कहेगा? ठीक, इसी प्रकार हमें मंगलमय भगवान्का संकीर्तन तो करना ही चाहिये, किंतु वेदशास्त्रस्वरूप भगवदाज्ञाओंका पालन भी अवश्य करना चाहिये। देशकी रक्षाके लिये, धर्मकी रक्षाके लिये, सभ्यता एवं संस्कृतिकी रक्षाके लिये मर-मिटनेमें तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ ही नहीं, अपितु संन्यासीका भी यह परम कर्तव्य है कि वह अपने देश, धर्म, जाति तथा सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षाके लिये उचित प्रयत्न करे। 'स्कन्दपुराण' का वाक्य है कि अत्यन्त प्रयत्न करके भी इस वैदिक मार्गका संस्थापन करो। इसके सुस्थिर हो जानेपर ही आधि-व्याधि, शोक-सन्ताप मिटेगा, दीनता, दरिद्रता, परतन्त्रता भी मिटेगी और सुख, समृद्धि, शान्ति, स्वाराज्य, वैराज्य, साम्राज्य, अनन्त धन-धान्यकी प्राप्ति होगी—'स्थापयध्वमिमं मार्गं प्रयत्नेनापि भो द्विजाः। स्थापिते वैदिके मार्गे सकलं सुस्थिरं भवेत्॥' विपत्तियोंका कोई आवाहन नहीं करता, कोई दुःख,

दरिद्रता, दीनता, हीनताको बुलाना नहीं चाहता। परंतु जब उनके कारण (अधर्म)—को पैदा किया जाता है, तब फलरूप सारी विपत्तियाँ भी भोगनी ही पड़ेंगी। इसी तरह जब धर्मानुष्ठानपर आरूढ़ होंगे, तब जैसे बरसाती नदियाँ तीव्र वेग एवं विशेष जलराशिके साथ समुद्रकी ओर स्वेच्छापूर्वक बढ़ती हैं, उसी तरह सारे सुख, सम्पत्ति, धर्मानुष्ठान करनेवालोंके पास अवश्यमेव आयेंगे—‘जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाही॥ तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥’

‘यश्च स्थापयितुं शक्तो नैव कुर्याद्विमोहितः ।
तस्य हन्ता न पापीयानिति वेदान्तनिर्णयः’ अर्थात्
जो इस वैदिक धर्ममार्गकी स्थापनामें समर्थ होता हुआ
भी प्रयत्न नहीं करता, उसके मारनेमें कोई पाप नहीं
होता, यह वेदका निर्णीत सिद्धान्त है। वैसे तो यह
अर्थवाद ही है, किंतु अर्थवाद भी गुणवाद, अनुवाद
नहीं, भूतार्थवाद है। यह सर्वथा ठीक है कि अपने
समक्ष माता-पिता, गुरुजनोंकी हत्या, उनका अपमान,
अत्याचारियोंद्वारा उनके ऊपर अत्याचार, व्यभिचारियोंद्वारा
माँ, बहन, बेटीका व्यभिचार देखकर भी क्षमा और
दयाकी डींग हाँकना केवल कायरता, कृपणता है।
धर्मके अनुकूल क्षमा और दया पुण्य हैं, पर धर्मके
प्रतिकूल वह पाप है। वैसे तो मृत्युसे बढ़कर कोई
कष्ट तथा स्वर्गके राज्यसे बढ़कर कोई सुख नहीं,
किंतु अर्जुन सबसे बड़े सुख त्रैलोक्यराज्यका परित्याग
तथा सबसे बड़े दुःख मृत्युको दयापरवश होकर सहन
करनेके लिये तैयार था—‘यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं
शस्त्रपाणयः । धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं
भवेत् ॥’ यदि धृतराष्ट्रके पुत्र शस्त्र हाथमें लेकर मुझ
अशस्त्रको युद्धमें मार दें, तो इसमें मेरा अधिक
कल्याण है। ‘अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्तु
महीकृते’ परंतु भगवान् ने हमें पाप ही बतलाते हुए
कहा— अर्जुन ! तुमको इस विषयमें कालमें यह अस्त्र

अनार्यसेवित, अकीर्तिकर पाप कहाँसे प्राप्त हुआ?’
‘कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥’ केवल भगवान्ने
ही नहीं कहा, किंतु अर्जुनने भी कार्पण्यदोष स्वीकार
किया—‘कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां
धर्मसम्पूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।’ कृपणताका
अर्थ कई आचार्योंने कई प्रकारसे किया है। किसी
आचार्यका कहना है कि जो थोड़ा-सा भी व्यय सहन
नहीं कर सकता, वह कृपण है—‘यः स्वल्पामपि
स्वात्मनो वित्तक्षतिं न क्षमते स कृपणः।’ अहर्निश
आजतक लाखों शरीर अन्याय, अत्याचार, दुराचार,
दुर्विचार, पापाचार, व्यभिचारमें खत्म हुए होंगे, किंतु
एक शरीरको जब सदाचार, सद्भिचार, सद्धर्म, सत्कर्म,
सत्संगमें लगानेके लिये कहा जाय तो उत्तर देते हैं कि
‘अजी, मरनेकी भी फुर्सत नहीं, यह उनका थोड़ा-सा
उचित व्यय सहन न करना ही कृपणता है।’ श्रुतिने
भी बतलाया है—गार्गी, जो इस अक्षर, अनन्त, अखण्ड,
एकरस, अद्वैत परमात्माको बिना जाने हुए इस लोकसे
चला जाता है, वह कृपण है—‘यो ह वा गार्गी
एतदक्षरमविदित्वा अस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः।’
ऐसी कृपणता अहंता, ममताको आगे करके हुआ
करती है। यदि साधारण स्त्रियाँ यह सोचती हैं कि
हमारे पति-पुत्र धर्म, देश, राष्ट्रकी रक्षाके लिये प्राणको
हथेलीपर रखकर, जीवनको संकटमें डालकर रणक्षेत्रमें
आगे बढ़ें, इसकी अपेक्षा भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह
करना अच्छा है, हम कभी भी अपने पति-पुत्रको
रणमें न भेजेंगी, तो अहंता-ममताके वशीभूत होकर
इस तरह पति-पुत्रको बचाना परम अधर्म है। भरतपुत्र
पुष्कल महाराजकी धर्मपत्नीने भगवान् रामचन्द्रके
अश्वमेधयज्ञमें अश्वरक्षाके लिये जाते हुए पुष्कलसे
यह कहा था कि ‘पतिदेव! मैं वीरपत्नी हूँ, आप
रणक्षेत्रमें प्राणको हथेलीपर रखकर जीवनको खतरे

अर्जुन अपने समयका गण्यमान्य सम्मानित आदर्श व्यक्ति था। अतः भगवान् ने पहले श्लोकसे ही उत्तर दिया कि अर्जुन! यदि तुम अपने धर्मसे विमुख हो जाओगे तो विधवाएँ भी विमुख हो सकती हैं; क्योंकि वे विचारेंगी कि हमारे यहाँका गण्यमान्य अर्जुन ही यदि अपने धर्मसे विमुख हो गया तो हम अपने धर्मका पालन क्यों करें—‘यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।’ जिसके घरकी माँ, बहन, बेटियाँ यह देखेंगी कि हमारे भाई, पिता, पुत्र अपने धर्म-कर्मकी रक्षाके लिये बलिवेदीपर प्राणोंको न्योछावर करनेको तैयार हैं तो क्या वे कभी व्यभिचारिणी हो सकती हैं? आज हमारा धर्म, हमारे शास्त्र, हमारी संस्कृति खतरेमें हैं। भगवान् का भजन तो हर समय करना ही चाहिये। वह तो हमारा सहारा है, पर साथ ही कर्तव्यविमुख कदापि न होना चाहिये। ‘मामनुस्मर युध्य च’ यही भगवान् का आदेश है। इस समय चुप बैठना कायरता है। हमें दृढ़-संकल्प होकर कर्तव्यपालन करना चाहिये। हमारे प्राण चले जायँ, भले ही हम सफल न हों, परंतु सर्व पापोंसे विमुक्त होकर मोक्ष अवश्य प्राप्त होगा ‘यः स्थापयितुमुद्युक्तः श्रद्धयैवाक्षमोऽपि सन्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्॥’

भजन कैसे करें ?

[गताङ्क ४ पृ० सं० १२ से आगे]

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक होता है—‘शब्दजाल’। महाभारतयुद्धमें भीमसेनने अश्वत्थामा नामक हाथीको मार दिया। फिर जाकर युधिष्ठिरसे बोले कि आप कह दीजिये कि अश्वत्थामा मर गया, तब द्रोणके हाथसे हथियार गिर पड़ेंगे और उसी अवस्थामें उन्हें मारा जा सकता है। धर्मराज बहुत असमंजसमें पड़ गये, लेकिन अन्ततः किसी प्रकार दब गये। उन्होंने कह दिया—‘अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो’—अश्वत्थामा मारा गया आदमी या हाथी। बादमें हाथी बोले, तबतक श्रीकृष्णने शंख बजा दिया और वह शब्द सुनायी नहीं दिया। अश्वत्थामा मारा गया—यह छल हो गया। शब्द-छलसे अगर हम किसीको वही शब्द कह देते हैं और हमारे मनमें समझानेकी बात कोई दूसरी रहती है तो वह झूठ है।

अतएव उद्वेगकारी वचन न बोले, सच बोले और सच भी मधुर शब्दोंमें कहे। लोग कहते हैं गर्वसे कि मैं सच बोलता हूँ, चाहे किसीको अच्छी लगे या खारी लगे। परंतु कोई उनसे वैसे ही बोले तब। यह विचारणीय है। इसलिये वाणीको बोलना चाहिये अमृतमें घोलकर—‘सत्यं प्रियहितं च यत्’।

बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥

(रा०च०मा० ७।३९।८)

मोर बड़ा मीठा बोलता है और साँप भी खा जाता है। ऊपरसे मीठा बोलना ही नहीं, हृदय भी मधुर हो और जबान भी मधुर हो। मीठी बोलीका अर्थ क्या है? जिसमें हितकी भावना भरी हो।

इसलिये दूसरेके मनमें उद्वेग करनेवाली जबान बोलना पाप, झूठ बोलना पाप, अप्रिय बोलना पाप, दूसरेके अहितकी बात बोलना पाप और व्यर्थ बोलना पाप है। इन पापोंसे जबानको बचाकर क्या करें? सबमें भगवान् हैं—यह समझकर सबका हित करनेकी इच्छासे सत्यप्रिय बोले और जब समय मिले तो जीभके द्वारा भगवान्का नाम लेता रहे।

‘स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥’

(गीता १७।१५)

यह वाणीका सदुपयोग है।

अब मनकी बात करें। मनसे भी पाँच पाप होते हैं। हमने ऐसे आदमी देखे हैं, जो कहते हैं—‘हम तो बहुत दुखी हैं। सारा संसार हमारा वैरी है। हमारे भाग्यमें तो सुख लिखा ही नहीं है। रात-दिन रोते रहते हैं। हमें तो दुःख-ही-दुःख है।’ चाहे हो नहीं, बिना हुए ही दुःख उपजा लेते हैं। यह विषाद—यह मनका पाप है। उनके मनमें निरन्तर आता रहे कि इसको कैसे मार दें, इसके घरमें कैसे आग लग जाय, इसका बेटा कैसे मर जाय, यह बीमार हो जाय तो बहुत अच्छा, इसका दीवाला निकल जाय तो बहुत अच्छा, इसके बेटेको बीमारी हो जाय, उसकी नौकरी छूट जाय तो बहुत अच्छा। यह क्रूरता है। क्रूर विचार मनके पाप हैं। क्रूरता पाप, विषाद पाप, व्यर्थ चिन्तन—बिना मतलब जगत्की बातोंको रात-दिन मनमें सोचते रहना, यह पाप है। चौथा पाप है मनका वशमें न रहना और पाँचवाँ पाप है मनमें गन्दी वासनाओंको रखना। इस सम्बन्धमें भगवान्ने कहा है—

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

(गीता १७।१६)

‘मनःप्रसादः’—भगवान्के राज्यमें रोनेकी जगह कहाँ है? सब जगह भगवान्का मंगल-विधान कार्य कर रहा है। हँसो, निरन्तर हँसते रहो। भागलपुरमें श्रीरामसकलसिंहजी रहते थे। प्रोफेसर थे। मैं उनसे एक बार मिला। उन्होंने सारी बातें हँसनेमें कीं। वे हँसनेकी भाषामें बात करते थे। केवल हँसते और हँसाते। यह है—‘मनःप्रसादः।’ मनमें नित्य प्रसन्न रहे। मनको सौम्य रखे, शीलवान् रखे, ठण्डा रखे। मनमें दया भरी रखे। मन मौन रहे। मनमें भगवान्का मनन करे, जगत्का मनन छोड़ दे। मन निगृहीत रहे, मन वशमें रहे और

भगवान्ने क्या किया? भगवान्ने मन बनाया।
इसलिये कि गोपांगनाओंको बुलाना है। क्यों? इसलिये
कि उनके बिना रह नहीं सकते। क्या नहीं रह सकते?

इसलिये भगवान्को साथ रखना हो तो असली भजन करे। असली भजनका अर्थ है—तनसे, मनसे और वाणीसे भगवान्का सेवन। [समाप्त]

भीष्मने पुनः कहा—युधिष्ठिर ! इसी प्रकार राजाको चाहिये कि वह अपने तथा परपक्षके पराक्रमको भलीभाँति समझकर नीतिके तत्त्वको समझनेका प्रयास करे। इस प्रकार समझकर जो व्यवहार करता है, उसकी कभी पराजय नहीं होती। [महा० शान्ति० ११३]

‘गावो विश्वस्य मातरः’

(अन्नन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)

गोसेवा प्रत्येक वर्णाश्रमी व्यक्तिका कर्तव्य है। प्रशासन भी गोसेवाके प्रकल्प चला रहा है तो यह प्रशंसनीय है। हम हमेशा अपने प्रवचनके पूर्व एवं अन्तमें ‘गोहत्या बन्द हो’ का नारा लगाते हैं। गोहत्या भारतमें बन्द हो, यह हमारे जीवनका लक्ष्य है।

हमें हार्दिक वेदना है इस समाचारसे कि विश्वमें भारत अग्रणी गोमांस-निर्यातक देश है। यह कैसे हो सकता है कि जिस देशमें सर्वाधिक प्राचीन संविधान ऋग्वेदके रूपमें पाया जाता है, जिसमें अनेकशः यह वर्णित है कि गाय सर्वथा अवध्या है। भारत राम-कृष्णका देश है। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं नंगे पैरोंसे चलकर गोचारण-लीला की। स्वयंको गोपाल, गोविन्द ख्यापित किया। अपने दिव्य-जन्मके उद्देश्योंमें एक गायकी रक्षा, सेवाको बतलाया। ऐसे श्रीराम-कृष्णका देश भारत गोमांसकी विश्वविख्यात मण्डी कैसे हो सकता है? क्या इसका दायित्व शासनका नहीं है?

भारतीय संस्कृतिका प्रमुख आधार गाय है। लौकिक रूपमें भी भारतकी कृषिप्रधान अर्थव्यवस्था होनेसे गोवंशको प्रश्रय दिया जा सकता है। आज भयंकर प्रदूषित होते वातावरणमें गाय ही हमारी रक्षा कर सकती है। दिनोंदिन पनप रहे भयंकर रोगाणु, बैक्टीरिया, जिनको अभीतक जाना ही नहीं गया, इनका समाधान आधुनिक चिकित्सामें भी नहीं है। अतः आगे आनेवाले भयंकर प्रदूषित वातावरणसे अपनी रक्षाके लिये भी हमें गायके साथ जीना सीखना होगा। वरना आनेवाली महामारीसे हम नहीं बच सकेंगे।

गायकी शताधिक श्रेणियाँ भारतमें पायी जाती हैं, जो कि अन्यत्र कहीं नहीं हैं। शासनको गायकी विभिन्न देशी श्रेणियोंको चिह्नितकर अलग-अलग उनका मूलरूपमें ही संरक्षण करना चाहिये। श्रेणीसुधारके नामपर गायकी नस्लको बदलना गायको मारने-जैसा ही है, यह भी अपराधकोटि है। गाय चेतन प्राणी है और वह एक प्रकृतिप्रदत्त उद्देश्यसे प्रकट हुआ है, उसकी रक्षा उसके मूलरूपमें ही होना आवश्यक है। जैसे सिंह आदि

प्रकृतिप्रदत्त शौर्य, क्रौर्य गुणोंके साथ ही हैं; श्रेणीसुधारके नामपर सिंहत्वको न तो बढ़ाया जा सकता है, न घटाया जा सकता है। इसी तरह गाय मनुष्यके शारीरिक, मानसिक पापोंको नष्ट करने, पृथ्वीका पोषण करने-जैसे अनेकों गुणोंको अपने अस्तित्वमें धारण करती है तो यह कहा जा सकता है कि गायका अस्तित्वमात्र ही कल्याणकारी है, इसके अस्तित्वसे छेड़छाड़ करना भयावह ही होगा। अब यह बात भी सुननेमें आ रही है कि जर्सी गायका दूध विभिन्न रोगोंका कारण है। हमारे शास्त्रोंके अनुसार भगवान्ने गायका निर्माण किया है, उसके रोम-रोममें तैतीस करोड़ देवता विराजमान हैं। गंगा और लक्ष्मी आमन्त्रणकी बाट जोह रही थीं, आमन्त्रण न मिलनेसे उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि उन्हें गायके शरीरमें स्थान दिया जाय, तबसे गायके गोबरमें लक्ष्मी और मूत्रमें गंगा रहती हैं। समस्त शुभकार्योंमें भूमिको प्रथम गायके गोबरसे लीपा जाता है। गोमूत्र मनुष्यके पापोंका नाश करता है। आयुर्वेदके अनुसार पेटके रोग, लीवरकी खराबी, कैंसरतकमें गोमूत्र उपयोगी है। यह वेदवचन है कि गाय निरपराध अदिति है, उसको मत मारो, यही बात बछड़े और बैलके लिये भी कही गयी है। हम चाहते हैं कुछ प्रदेशोंमें ही नहीं समस्त भारतमें गोहत्या बन्द होनी चाहिये। उत्तर प्रदेशके किसी मन्त्रीने कहा था कि सरकार गोहत्या बन्द करके हिन्दूराज्य लाना चाहती है, जो मुसलमानोंके विरुद्ध है। इसपर हमने कहा था—‘हम हिन्दूराज्य नहीं, रामराज्य स्थापित करना चाहते हैं। रावण, कंस, दुर्योधन, जरासंध हिन्दू ही थे; हम उनके जैसा राज्य नहीं चाहते। रामराज्य इसलिये चाहते हैं; क्योंकि रामराज्यमें कुत्तेको भी न्याय मिला था तो गायको भी न्याय मिलेगा। मुसलमानोंको रामराज्यसे भयभीत नहीं होना चाहिये; रामराज्यमें उनको भी न्याय मिलेगा।’

गाय घास चरकर हिन्दू-मुसलमानका भेदभाव किये बिना हमें मीठा दूध देती है। उसके गोबरसे खाद

है, सड़कोंपर घूमती है, इसे काट देना चाहिये तो इसमें गायका क्या दोष है? दोष गायकी गोचरभूमि हड़पनेवालोंका है या जिसकी गाय है उसका है, दण्डनीय गाय नहीं है। गायकी कमाईसे जीवनयापन करनेवाले उसकी कमाईको हड़पकर उसी गायमें खर्च नहीं करते, उसको कटने भेज देते हैं। इसपर समाजको सोचना चाहिये। कुछ लोग इस तरह भी कह रहे हैं कि एक जगह ही गायको इकट्ठाकर उनकी सेवा की जाय, किंतु समस्त गायोंको एक जगह रखनेसे विपत्तिकाल जैसे-अतिवृष्टि, अकाल या स्थानविशेषपर फैलनेवाले रोगोंसे बहुत बड़ी हानिकी सम्भावना है। अतः घर-घर, गाँव-गाँव, नगर-नगरमें गोसेवाका सन्देश पहुँचना चाहिये। महाराष्ट्र सरकारने गोहत्या, गोमांसके विरुद्ध जब प्रतिबन्ध लगाया तो तथाकथित नेताओंने यह कहा कि इससे गरीब मुसलमान सस्ते प्रोटीनसे वंचित हो जायँगे, किंतु उन्होंने यह विचार नहीं किया कि करोड़ों शाकाहारी लोगोंका आहार गायका दूध है, उनका प्रोटीन गोदुग्ध है, क्या वे लोग इससे वंचित नहीं होंगे? चन्द मुट्ठीभर लोगोंके लिये करोड़ों लोगोंकी अनदेखी अनुचित है। क्या यही धर्मनिरपेक्षता है? अस्तु! गायके समस्त गुणोंको बतलानेका सामर्थ्य किसीमें नहीं; क्योंकि भविष्यमें होनेवाले किस रोगकी दवा गायसे प्राप्त गव्यसे सम्भव नहीं होगी, यह अभीसे कैसे कहा जा सकता है?

बजाते क्यां मुरली मधुबन में आके।
जो मुरारी ने गैया चराई न होती॥
धरा भी रसातल में जलमग्न होती।
जो गैया इनको सींगों पे उठायी न होती॥
भवसिन्धु से न होता तारण-तरण 'पारस'।
जो गोदान की रीति आयी न होती॥

साधकोंके प्रति—

[मृत्युके भयसे कैसे बचें?]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

संसारके सम्पूर्ण दुःखोंके मूलमें सुखकी इच्छा है। बिना सुखेच्छाके कोई दुःख होता ही नहीं। ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—इस इच्छामें ही सम्पूर्ण दुःख हैं। मृत्युके समय जो भयंकर कष्ट होता है, वह भी उसी मनुष्यको होता है, जिसमें जीनेकी इच्छा है; क्योंकि वह जीना चाहता है और मरना पड़ता है! अगर जीनेकी इच्छा न हो तो मृत्युके समय कोई कष्ट नहीं होता, प्रत्युत जैसे बालकसे जवान और जवानसे बूढ़ा होनेपर अर्थात् बालकपन और जवानी छूटनेपर कोई कष्ट नहीं होता, ऐसे ही शरीर छूटनेपर भी कोई कष्ट नहीं होता। गीतामें आया है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

(२।१३)

‘देहधारीके इस मनुष्यशरीरमें जैसे बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, ऐसे ही देहान्तरकी प्राप्ति होती है। उस विषयमें धीर मनुष्य मोहित नहीं होता।’

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(२।२२)

‘मनुष्य जैसे पुराने कपड़ोंको छोड़कर दूसरे नये कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरोंमें चला जाता है।’

शरीरमें अध्यास अर्थात् मैपन और मेरापन होनेसे ही जीनेकी इच्छा और मृत्युका भय होता है। कारण कि शरीर तो नाशवान् है, पर आत्मा अमर (अविनाशी) है और इसका विनाश कोई कर ही नहीं सकता—

‘विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति’ (गीता २।१७), ‘न हन्यते हन्यमानं शरीरं’ (गीता २।२७)।

राम मेरे तो मैं मरूँ, नहीं तो मेरे बलाय।

अविनाशी का बालका, मेरे न मारा जाय॥

शरीर प्रतिक्षण मरता है, एक क्षण भी टिकता नहीं और आत्मा नित्य-निरन्तर ज्यों-का-त्यों रहता है, एक क्षण भी बदलता नहीं। अतः जीनेकी इच्छा और मृत्युका भय न तो शरीरको होता है और न आत्माको ही होता है, प्रत्युत उसको होता है, जिसने स्वयं अविनाशी होते हुए भी नाशवान् शरीरको अपना स्वरूप (मैं और मेरा) मान लिया है। शरीरको अपना स्वरूप मानना अविवेक है, प्रमाद है और प्रमाद ही मृत्यु है—‘प्रमादो वै मृत्युः’ (महा० उद्योग० ४२।४)।

प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही सुख-दुःखका भोक्ता बनता है—‘पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।’ (गीता १३।२१) पुरुष प्रकृतिमें स्थित होता है—अविवेकसे। स्वरूपको शरीर और शरीरको अपना स्वरूप मानना अविवेक है। यह अविवेक ही दुःखका कारण है। तात्पर्य है कि मनुष्य नाशवान्को रखना चाहता है और अविनाशीको जानना नहीं चाहता, इस कारण दुःख होता है। अगर वह नाशवान्को अपना स्वरूप न समझे और स्वरूपको ठीक जान जाय तो फिर दुःख नहीं होगा।

शरीरमें जितना अधिक मैपन और मेरापन होता है, मृत्युके समय उतना ही अधिक कष्ट होता है। संसारमें बहुत-से आदमी मरते रहते हैं, पर उनके मरनेका दुःख, कष्ट हमें नहीं होता; क्योंकि उनमें हमारा मैपन भी नहीं है और मेरापन भी नहीं है।

मृत्युके समय एक पीड़ा होती है और एक दुःख होता है। पीड़ा शरीरमें और दुःख मनमें होता है। जिस मनुष्यमें वैराग्य होता है, उसको पीड़ाका अनुभव तो होता है, पर दुःख नहीं होता है, देहमें आसक्त

अगर भीतरमें कोई इच्छा न हो तो सांसारिक
ओंकी प्राप्तिसे सुख नहीं होता और अप्राप्ति तथा

विनाशसे दुःख नहीं होता। इच्छा होनेसे ही सुख और दुःख—दोनों होते हैं। सुख और दुःख द्वन्द्व हैं, जिनसे मनुष्य संसारमें बँध जाता है। वास्तवमें सुख और दुःख—दोनों एक ही हैं। सुख भी वास्तवमें दुःखका ही नाम है; क्योंकि सुख दुःखका कारण है—‘**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।**’ (गीता ५। २२) अगर मनुष्यमें कोई इच्छा न हो तो वह सुख और दुःख—दोनोंसे ऊँचा उठ जाता है और आनन्दको प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्यमें न दिन है, न रात है, प्रत्युत नित्य प्रकाश है, ऐसे ही आनन्दमें न सुख है, न दुःख है, प्रत्युत नित्य आनन्द है। उस आनन्दका एक बार अनुभव होनेपर फिर उसका कभी अभाव नहीं होता; क्योंकि वह स्वतःसिद्ध, नित्य और निर्विकार है।

अगर सब इच्छाओंकी पूर्ति सम्भव होती तो हम जीनेकी इच्छा पूरी करनेका उद्योग करते और अगर मृत्युसे बचना सम्भव होता तो हम मृत्युसे बचनेका प्रयत्न करते। परंतु यह सबका अनुभव है कि सब इच्छाएँ कभी किसीकी पूरी नहीं होतीं और उत्पन्न होनेवाला कोई भी प्राणी मृत्युसे बच नहीं सकता, फिर जीनेकी इच्छा और मृत्युसे भय करनेसे क्या लाभ ? जीनेकी इच्छा करनेसे बार-बार जन्म और मृत्यु होती रहेगी तथा जीनेकी इच्छा भी बनी रहेगी !

इसीलिये जीते-जी अमर होनेके लिये इच्छाका त्याग करना आवश्यक है।

शरीर ‘मैं’ नहीं है; क्योंकि शरीर प्रतिक्षण बदलता है, पर हम (स्वयं) वही रहते हैं। अगर हम वही न रहते तो शरीरके बदलनेका ज्ञान किसको होता? बदलनेका ज्ञान न बदलनेवालेको ही होता है। शरीर ‘मेरा’ भी नहीं है; क्योंकि इसपर हमारा आधिपत्य नहीं चलता अर्थात् इसको हम अपनी इच्छाके अनुसार रख नहीं सकते, इसमें इच्छानुसार परिवर्तन नहीं कर सकते और इसको सदा अपने साथ नहीं रख सकते। इस प्रकार जब हम शरीरको ‘मैं’ और ‘मेरा’ नहीं मानेंगे, तब उसके जीनेकी इच्छा भी नहीं रहेगी। जीनेकी इच्छा न रहनेसे शरीर छूटनेसे पहले ही नित्यसिद्ध अमरताका अनुभव हो जायगा।

असत्का भाव (सत्ता) नहीं है और सत्का अभाव नहीं है—‘नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।’ (गीता २।१६) सत् सत् ही है और असत् असत् ही है । अतः न सत्का भय है, न असत्का भय है । अगर भय रखें तो भी शरीर मरेगा और भय न रखें तो भी शरीर मरेगा । मरेगा वही, जो मरनेवाला है; फिर नयी हानि क्या हुई ? अतः मृत्युसे भयभीत होना व्यर्थ ही है ।

माँ

(श्रीरंधीरकुमारजी)

माता तेरी करुण-कथा को, मैं कैसे लिख पाऊँगा।
 धरती सब कागज कर दूँ, पर तेरा अंत न पाऊँगा॥
 ममता की मूरत थी माता मेरी, और करुणा की धारा थी।
 आँचल में वात्सल्य प्रेम की, बहती अवरिल धारा थी॥
 आँखों में निश्छल प्रेम, हृदय से दया का सागर थी।
 चरणों से आशीष की गंगा, बहती निर्मल धारा थी॥
 वाणी से असीम प्रेम की, लहरें आती जाती थीं।
 कभी किसी का अहित न करना, प्रति दिन पाठ पढ़ाती थीं॥
 तेरी कृपा से ही हे जननी, नूतन शरीर को पाया था।
 ममता के आँचल में पलकर, फूला नहीं समाया था॥
 घुटनों के बल चल-चलकर, तेरे समीप जब आता था।
 अमृत स्रधा का पान कराती, परमानन्द को पाता था॥

तेरी ममता का अपार ऋण, मैं कैसे कभी चुकाऊँगा।
तुम संसार को छोड़ चली हो, कहाँ सहारा पाऊँगा॥
तेरा जाना यूँ लगता है, जैसे सब कुछ एक सपना था।
यथार्थ बदल सकता ही नहीं, यह सच तो निश्चित घटना था॥
तेरे जाने से हे जननी, संसार अधूरा लगता है।
हृदय विषाद से तपता है, घर-आँगन सूना लगता है॥
माता किसे पुकारूँ कहकर, माँ का अब नहीं सहारा है।
माता तेरी प्रेम सरिता का, जग में कहाँ किनारा है॥
तेरी बगियों की शोभा क्या, सब तुम बिन सूना लगता है।
माता विहीन पुत्र को जग क्या, त्रिलोक भी सूना लगता है॥
माता तेरी चरण रज में, श्रद्धा सुमन चढ़ाऊँ मैं।
दो ऐसा वरदान हे जननी जग में नाम कमाऊँ मैं॥

मानवताकी सफल योजना

(स्वामी श्रीनारदानन्दजी सरस्वती)

मानवताका परिचय मानव-धर्मसे ही होता है, तथा देवदूतोंके रूपमें ऋषि-मुनियोंका अवतरण हुआ। शरीरकी आकृतिसे नहीं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धैर्य, क्षमा, दम, चोरी न करना, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—इन दस धर्मके लक्षणोंसे युक्त मनुष्यको मनुने 'मानव' कहा है।

**अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। जाति-
देशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।**

(योगदर्शन)

सभी जाति, देश, कालमें मनुष्यमात्रने इसे स्वीकार किया है। इन्हीं महाव्रतोंको दृढ़ करनेके लिये तथा व्यवहारको सुव्यवस्थित चलानेके हेतु राष्ट्र-निर्माणमें परम उपयोगी समझकर वर्णाश्रम-व्यवस्थाको आदरसहित पालन करनेमें बहुत कालतक ऋषियोंने प्रयास किया है।

प्राचीन इतिहाससे बोध होता है कि वर्णाश्रम-व्यवस्था-पालनमें उपर्युक्त महाव्रतोंकी जब-जब उपेक्षा की गयी, तब-तब मानव-समाजमें असंतोष, विग्रह, दुर्व्यवस्था तथा क्षोभ उत्पन्न हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अवैदिक मतोंका प्रचार हुआ। कुछ कालतक सुख-शान्तिके आभासका अनुभव हुआ तथा वर्णाश्रम-धर्मरहित सामान्य धर्मोंका समुदायने आश्रय लिया, पर न वह अवैदिक धर्म सम्पूर्णतया व्यापक ही हो सका, न दीर्घकालतक स्थिर ही रहा। अपितु उसने सैकड़ों पन्थ, स्वेच्छाचारी वर्ग एवं भिन्न-भिन्न जातियोंको जन्म दिया। कलह, अशान्ति बढ़ गयी; स्वेच्छाचारिता, पाखण्ड, नास्तिकताका घोर प्रवाह चला। समयके परिवर्तनने समाजको भोग-लिप्सासे असन्तुष्ट, किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। तत्त्वदर्शियोंका अभाव होनेसे मानव-समाजको पथ-प्रदर्शन न मिल सका। जनता दुखी होकर अखिल सृष्टिके संचालक दैवी शक्तिसे प्रार्थना करने लगी। देव

तथा देवदूतोंके रूपमें ऋषि-मुनियोंका अवतरण हुआ। उन्होंने अहिंसादि महाव्रतोंका स्वयं पालन करते हुए वर्णाश्रमकी मर्यादा-स्थापनाद्वारा मनुष्य-समाजको मार्ग दिखाया। प्राणिमात्रको सुख-शान्ति मिली, दीर्घकालतक समाजकी सुव्यवस्था चलती रही। केवल पंचमहाव्रतोंसे अथवा इनकी उपेक्षा करके वर्णाश्रम-धर्मसे समाजकी सुन्दर व्यवस्था नहीं बनी।

पूर्वकालीन इतिहासको भली प्रकार दीर्घकालतक मनन करनेसे यह निष्कर्ष निकलता है कि महाव्रतोंका पूर्ण आदर करते हुए समाजको किसी अंशतक सुख मिल सकता है। वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी उपेक्षा करके महाव्रतोंका सहस्रों वर्ष प्रचार किया गया, पर समाज सुव्यवस्थित न हो सका और पंचमहाव्रतोंकी उपेक्षा करके केवल वर्णाश्रमधर्म भी समाजको सन्तुष्ट न कर सका। पंचमहाव्रतका और वर्णाश्रमधर्मका शास्त्रविधिसे पालन करनेपर ही मानवताका पूर्ण विकास हो सकता है। शास्त्रका विधान मनुष्यमें पशुता और दानवताका परिहार करता हुआ मानवताके पूर्ण विकासरूप देवत्वतक उसे पहुँचानेमें समर्थ है।

तत्त्ववेत्ताओंने जिस मनुष्यमें पूर्ण मानवताका विकास पाया, उसे महापुरुष, पुरुषोत्तम आदि विशेषणोंसे सम्बोधित किया। संत, साधु, महात्मा शब्दोंसे भी व्यक्त किया है। श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवी, आसुरी सम्पदके लक्षणोंद्वारा मानवता और दानवताका अन्तर समझाया है। श्रीरामचरितमानसमें परम भागवत गोस्वामी तुलसीदासजीने संत, असंतके लक्षणोंद्वारा दोनों पक्षोंका निरूपण किया है।

भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने मानवताके पूर्ण विकासके लिये वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी रक्षाका आदर्श उपस्थित किया। केवल प्रवचनसे नहीं, अपितु अधिक-से-अधिक लोकसंग्रहके अर्थ—स्वधर्मका पालन किया।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

उसी प्रकार लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णभगवान् ने जिनको स्वयं कर्म करनेकी आवश्यकता न थी, लोकसंग्रहके निमित्त स्वयं धर्ममर्यादाका पालन किया और समुदायसे करवाया। जिससे यह प्रतीत होता है कि जीवन्मुक्त तत्त्ववेत्ता ही स्वधर्मका पालन करके मानव-समाजको मानवताकी शिक्षा देनेमें समर्थ हुए हैं, सफल हो रहे हैं और सफल होंगे। आचरणकी उपेक्षा करके केवल बृहस्पतिके समान वक्ता होकर भी सुमधुर प्रवचनद्वारा ही जनताको सत्कर्मकी शिक्षा देनेमें कोई समर्थ नहीं हो सकता। भले ही उपदेशसे सात्त्विक भाव अंशतः जाग्रत् हो जायँ। शास्त्रविधानके आधारपर जीवन्मुक्तोंद्वारा मानवताकी शिक्षा कभी विफल नहीं हो सकती।

महत्सङ्गस्त

दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।

(नारदभक्तिसूत्र)

परब्रह्म परमात्मा अचल है, सनातन है। सच्चिदानन्दघन, अपरिवर्तनशील, जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय जिसमें आरोपित है, वही अक्षय सुखका भण्डार मनुष्योंके लिये जीवनका लक्ष्य होना चाहिये। विषयभोगमें सुख नहीं। नश्वर पदार्थ परिणाममें दुःखदायी होनेसे वैराग्य करनेयोग्य हैं। परमात्मा ही अक्षय सुख-भण्डार होनेके कारण सब जीवोंको अमर सुख प्राप्त करा सकता है।
जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी॥

जो आनंदसिंधु सुखरासी । सीकर ते त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुखधाम राम अस नासा । अखिल लोक दायक बिश्रामा ॥

प्राचीन कालके इतिहासमें दैवी आचरणोंके आधारपर शास्त्रोक्त विधिसे ब्रह्मप्राप्तिके उद्देश्यका आश्रय लेकर एक समाज अपनी उन्नति करता था। दूसरा विषयभोगको ध्येय मानकर आसुरी गुण-कर्म-स्वभावका आश्रय लेकर अपना उत्थान करता था। कभी-कभी परस्परमें टकरानेसे देवासुर-संग्राम हो जाता था। महाभारत तथा लंकाकाण्ड इसीके उदाहरण हैं।

एक ही वंशमें दैवी, आसुरी प्रकृतिके कारण ही दो समुदायोंका बन जाना स्वाभाविक था। एक समाजमें दो उद्देश्य, दो विधान-पालन नहीं हो सकते। रावणका वंश हिन्दुиз्म-विरोधी था।

कौरव भी चचेरे भाई थे। कौरवों, पाण्डवोंका विपरीत उद्देश्य होनेसे भगवान् श्रीकृष्ण भी नीति और प्रकृतिके कारण समन्वय न करा सके। यदि दोनों समाज एकमें मिलकर रहते तो पाण्डवोंका विनाश हो जाता। वेश्या और पतिव्रताकी साझेकी दूकान चलानेमें वेश्याकी कोई क्षति नहीं, पतिव्रताकी ही क्षति है। संत-कसाईके साझेकी दूकानमें संतकी क्षति है, कसाईकी नहीं; भेड़ और भेड़ियाको एक कमरेमें रखनेसे भेड़को भय है, भेड़ियाको नहीं। ऐसे ही दैवी गुणोंके पुरुषको क्षति है, आसरी वृत्तिवालेको नहीं।

जाके प्रिय न राम-बैदेही ।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषण बंध, भरत महतारी।

बलि गरु तज्यो, कंत ब्रजबनितन्हि, भये मद-मंगलकारी ॥

यदि किसी मनुष्यको अपनी दानवता दुःखदायी प्रतीत हो, ग्लानि हो तो उसे मानवताके सच्चे पुजारी, केवल साधु-वेशधारी ही नहीं, अपितु साधुप्रकृतिवालोंकी शरणमें जाना चाहिये। जैसे एक रत्नाकर डाकूको जब अपनी दुश्चरित्रता, दानवतापर ग्लानि हुई, उसी समयसे उसने संतोंकी शरण ली, तप किया और त्रिकालदर्शी, महाकवि, महामानव, महर्षि वाल्मीकिके पदको प्राप्तकर



भगवान श्रीरामको आशीर्वाद देने योग्य बन गये ।

वर्ग १० हिंदु धर्म का प्रस्तावित पाठ्यक्रम २०२०-२१

किया है—

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

(९।३०)

कोई भी मनुष्य अपने दुश्चरित्रोंसे दुःखित होकर मेरी शरणमें आता है तो मैं उसको शीघ्र ही साधुवृत्तिवाला बनाकर सदैवके लिये सुखी करके जीवन कृतार्थ कर देता हूँ।

देह धरे कर यह फलु भाई । भजिअ राम सब काम बिहाई ॥

सभी शास्त्रोंका यही सार है कि मानवताका विकास करो। दानवताका विनाश करो। रजोगुण, तमोगुण दानवताको बढ़ानेवाले हैं, सत्त्वगुणकी वृद्धिसे मानवताका विकास होता है। भागवतके एकादश स्कन्धमें मानवता बढ़ानेके दस साधन बताये हैं—

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ।

ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।४)

शास्त्र, जल, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र, संस्कार—ये दस वस्तुएँ सात्त्विक, राजस, तामस जिस गुणवाली होती हैं, उसी गुणको बढ़ाती हैं।

अतः सात्त्विक समाज एकत्रित करके मानवताके सदगुणोंद्वारा एकताका संगठन करे, जिससे समाज शनैः-शनैः अपनी दुर्वृत्तिका दमन करके सत्त्वगुणी बननेका प्रयास कर सके।

जो व्यक्ति धर्म, ईश्वरसे विमुख होकर समाजकी सेवामें लगे हैं, उनमें भी मानवताके लक्षण मिलते हैं। जो ईश्वर, धर्मको माननेवाले समाजकी सेवाको भूले हुए हैं, उनमें भी कुछ अंश मानवताके पाये जाते हैं। यदि ईश्वर, धर्मको माननेवाले जनताको जनार्दन समझकर समाज-सेवाको भगवत्सेवाका अंग समझें और समाजसेवी पुरुष ईश्वर-स्मरणको समाज-सेवाका अंग समझें तो विश्वशान्ति होनेमें अधिक समय नहीं लगेगा। इसीसे भागवतकार श्रीव्यासजीने परम पूजाके रहस्यको व्यक्त

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ।

प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥

(श्रीमद्भा० ११।२।४५-४६)

‘प्राणिमात्रमें भगवद्बुद्धि रखकर उस विराट्

भगवान्‌को सर्वत्र देखना मानवताका सत्यस्वरूप है। ईश्वरसे प्रेम, भक्तोंसे मैत्री, अज्ञानीपर कृपा, दुष्टोंके प्रति उपेक्षाभाव रखना मानवताका आंशिक रूप है।' अतः अपनी वृत्तिको सुन्दर बनानेके हेतु आन्तरिक विकारोंकी निवृत्ति करना चाहिये। हृदयकी सुन्दरता सच्ची मानवता है, शरीरकी सुन्दरता नहीं। काम-क्रोधादि षट् विकार मनुष्यको दानवताकी ओर प्रवृत्त करते हैं, इनकी निवृत्ति और दैवीसम्पद्के लक्षणोंकी वृद्धि मानवताके विकासमें सहायक है।

समाजका नेतृत्व तत्त्ववेत्ता ही कर सकते हैं;
क्योंकि वे राग-द्वेषसे रहित होते हैं—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

(गीता २।६४)

रागी पुरुष गुण न होते हुए भी आसक्तिके कारण गुण देखता है। द्वेषदृष्टिवाला पुरुष दोष न होते हुए भी दोष देखता है। अतः रागद्वेषरहित होकर व्यावहारिक क्रिया करे। शुद्ध हृदयवाले पुरुषोंके संगठनमें देर नहीं लगती। राग-द्वेष-युक्त पुरुषोंका संगठन दुःसाध्य है, अतः एक विचारवाले सभी सात्त्विक समाजका संगठन मानवताके आधारपर हो सकता है। यह ध्रुव सत्य है। ऋषियोंका यह उदार सिद्धान्त प्राणिमात्रके लिये हितकारी है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभागभवेत् ॥

जीवनका सच्चा लाभ

(श्रीबरजोरसिंहजी)

संसारका प्रत्येक प्राणी जीवनमें सदा लाभ-ही-लाभ चाहता है, अपनी हानि तो कोई चाहता नहीं, परंतु देखा यह जाता है आम तौरपर आदमी धनके लाभको ही वास्तविक लाभ समझते हैं। जिन्होंने किसी भी तरहसे छल, कपट, बेईमानीसे धनका संग्रह कर लिया है, वे अपने-आपको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, अपने-आपको नम्बर एकका आदमी मानते हैं। इसके विपरीत ईमानदारीसे पैसा कमानेवालों और कम पैसोंमें अपना गुजारा करनेवालोंको आजके समाजके तथाकथित सम्भ्रान्त लोग पिछड़ा और दकियानूसी कहते हैं। विडम्बना यह कि आज जो झूठ बोलता है, छल-कपट करता है, वह हर जगहपर कामयाब होते देखा गया है। आज तो ऐसा समय आया है, घोर कलियुगका कि **‘साँचे को फाँके पड़ें लाबर लड्डू खाय।’** वाली कहावत लागू हो रही है। जो चापलूसीसे धन अर्जित कर लेते हैं, वे कहते फिरते हैं कि मैंने ऐसा किया, मैंने वैसा किया, मैंने उसको मूर्ख बनाया, मैंने उसका धन छीना। वे इस तरहकी बातें करते देखे जाते हैं, पर यहाँपर एक सवाल खड़ा होता है कि क्या धन कमा लेना ही जीवनका वास्तविक लाभ है? जिन्होंने सन्तों-सत्पुरुषोंकी संगति नहीं की, वे वास्तविक लाभको नहीं समझ सकते। आइये अब देखें कि वास्तविक लाभ क्या है। लाभकी परिभाषा बताते हुए सन्तशिरोमणि तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें कह रहे हैं कि—

लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥
हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥

जिसकी महिमा वेद-सन्त और पुराण गायन करते हैं, उस प्रभुकी भक्तिके समान क्या कोई अन्य लाभ है? अर्थात् नहीं और हे भाई! मनुष्यशरीर पाकर भी प्रभुका भजन न किया जाय जगत्में, क्या इसके समान कोई दूसरी हानि है? अर्थात् नहीं है।

इस मूल्यवान् शरीरसे अथक परिश्रम करके जो

केवल सांसारिक धन कमा रहे हैं, जिसे अन्तमें स्वयं ही मिट्टी हो जाना है, इस धनसे क्या लाभ! परलोकमें तो यह धन साथ नहीं जाता। संसारी मनुष्योंकी यह दशा देखकर सत्पुरुष गुरु श्रीअर्जुनदेवजी महाराज कहते हैं कि—

‘रे मूड़े लहि कउ तूँ ढीलादीला तोटे कउ बेगि धाइआ॥’

(गुरुवाणी)

‘हे अज्ञानी मनुष्य। जीवनके सच्चे लाभके लिये तू टालमटोल और आलस्य करता है, परंतु आत्मिक हानिकी ओर शीघ्र दौड़-दौड़कर जाता है।’

मनुष्यशरीररूपी पूँजी अथवा श्वासोंकी पूँजी जो परमपिता परमात्माने हमको दी है, वह तो निरन्तर हाथोंसे जा रही है, परंतु उस पूँजीके बदले आप कौन-सा लाभ ले रहे हैं, इसपर जरा गम्भीरतापूर्वक विचार कीजियेगा। इस पूँजीके बदले आप सच्चा लाभ लेकर संसारसागरसे जाओगे तो परमपिता परमात्माकी कृपा प्राप्त करोगे और जन्म-मरणके चक्करसे हमेशा-हमेशाके लिये छूट जाओगे, परंतु इस पूँजीके बदले संसारका धन बटोरते रहोगे तो धन तो साथ जायगा नहीं, बहुमूल्य शरीर भी व्यर्थ हो जायगा। इतिहास गवाह है कि धन कभी किसीके साथ नहीं गया, मुट्ठी बाँधकर आये थे और खाली हाथ जाना पड़ेगा। आप कुछ लेकर जाना चाहते हो या खाली हाथ जाना चाहते हो, ये निर्णय तो आपको ही करना है। भजन, भक्ति, रामनाम और किये गये शुभ कर्मका सच्चा धन ही अन्तकालमें सहायता करेगा और परलोकमें साथ जायगा, सांसारिक धन तो यहीं छूट जानेवाला है। सन्त सहजोबाईने स्पष्ट कहा है कि—

यह अवसर दुरलभ मिलै, अचरज मनुषा देह।

लाभ यही सहजो कहै, हरि सुमिरन करि लेह॥

हमारे सन्त महापुरुषोंका यह कहना है कि आप धन जरूर कमाओ; क्योंकि धनके वगैर कुछ भी होनेवाला

अर्थात् तनपर चिथड़ा पहना या पीताम्बर धारण किया, इससे क्या फर्क पड़ता है। घरमें एक स्त्री हो या अनेक, हाथी-घोड़े हों या न हों, भोजन रूखा-सूखा खाया या तर माल खाया, इन बातोंसे कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन यदि मोक्षके लिये प्रयत्न नहीं किया तो जीवन तो बेकार ही चला गया। जीवनका सच्चा लाभ तो मिला ही नहीं।

—गोलोकवासी महात्मा श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज

कहानी—

चौधरीजीका मायरा

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

हिन्दुओंमें बहनके पुत्र या पुत्रीके विवाहपर भाई भात (मायरा) लेकर बहनके यहाँ जाता है। यह प्रथा हजारों वर्षोंसे चली आ रही है। यदि भाई न हो, तो पीहरके पड़ोसी या गाँवके किसी व्यक्तिद्वारा चुनरीका नेग किया जाता है। भातके नेगचारके बिना विवाहके आगेके कार्यक्रम रुके रहते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दीकी घटना है। जूनागढ़के पास अंजार नामका एक कसबा है। यहाँ नरसी मेहताकी पुत्री नानीबाईकी ससुराल थी। नानीबाईकी पुत्रीका विवाह था। परम्पराके अनुसार जूनागढ़से मेहताजी भात लेकर आनेवाले थे, परंतु इसके लिये उनके पास साधन नहीं थे। वे भगवद्भक्त थे, जो कुछ था भी, साधु-सन्तोंकी सेवा-आवभगतमें खर्च कर दिया और उन्हींकी मण्डलीमें रहकर हरिभजनमें मग्न रहते। परिवारके लोगों तथा मित्रोंको अंजार साथ चलनेके लिये उन्होंने आमन्त्रित किया। किंतु भला उनके साथ जाकर कौन अपनी हँसी कराता ? अखिर वे अकेले ही एक टूटी-सी बैलगाड़ीपर अंजारकी ओर चल पड़े। साथमें साधु-मण्डली भी हरि-कीर्तन करती जा रही थी।

उधर नानीबाईके ससुरालवाले मेहताजीके स्वभावसे परिचित थे। उनकी माली हालत भी उनसे छिपी न थी। बाईको ताने देते कि मेहताजी बहुत बड़ा भात लेकर आ रहे हैं। बाईके पास चुपचाप सहनेके अलावा और कोई उपाय नहीं था। वह उदास रहती और पिताके आनेकी राह देखती।

इसी बीच एक दिन लोगोंने जूनागढ़की तरफसे गाजे-बाजे और रथोंकी घण्टियोंकी आवाज आती सुनी। उत्सुकतावश सभी जमा हुए। थोड़ी देरमें सचमुच ही बेशकीमती साजो-सामान लिये मेहताजीके मुनीम आ पहुँचे। अपना परिचय साँवरियाके नामसे दिया और बताया कि मेहताजीकी आरसे भातका सामान लेकर

आये हैं। बाईके लिये हीरे-मोती-जड़े गहने एवं चुनरी, सास-ननदके लिये कीमती वस्त्र, यहाँतक कि नौकर-चाकरोँके लिये सोनेकी कण्ठी और कपड़े।

ऐसे अवसरों पर ससुरालवाले तरह-तरहकी फरमाइशें पीछे नहीं रहते। अनेक प्रकारकी कीमती चीजोंकी माँग पेशकर नीचा दिखानेकी चेष्टा करते हैं, परंतु मुनीमजी तो मानो सारी परिस्थितियोंके लिये पहले ही से तैयारीके साथ आये थे। सबकी फरमाइशें पूरी कर दी और वापस चले गये।

इसके बाद मेहताजी इकतारेपर केदार रागमें भजन गाते हुए पुत्रीकी ससुराल पहुँचे, साथमें साधु-मण्डली भी थी। समधियानेवालोंने उनका ससम्मान स्वागत किया और बताया कि मुनीमजीके हाथों आपने जो चीजें भेजी थीं, वे मिल गयीं, परंतु वे चले गये। कह रहे थे, जरूरी काम है।

दूसरी घटना—१९वीं शताब्दीकी है। दिल्लीके उत्तरमें मेरठ, हापुड़, मुक्तेश्वर एवं सहारनपुर कसबोंमें उन दिनों गुज्जर पठानोंकी जागीरदारियाँ थी। यद्यपि मालगुजारी और उसकी वसूलीका अधिकार अँगरेजोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनीको हो गया था, फिर भी इन जागीरदारोंमेंसे बहुतोंके सम्बन्ध एवं रसूक, कम्पोवेश दिल्लीके बादशाहसे कायम थे। सैकड़ों सालसे चले आये आपसी ताल्लुकात बाइज्जत बरकरार थे।

अँगरेज, सिक्खोंसे युद्धमें उलझे थे। मुगल-शासन पहलेसे ही शिथिल था। हुकूमत कम्पनी सरकारकी चलती थी, पर युद्धके कारण वह शासनको सुव्यस्थित नहीं कर पा रही थी। इसीलिये इन जिलोंके ताल्लुकों और जागीरोंमें चोरी-डकैती और राहजनीका जोर था। यहाँतक कि कुछ बड़े जागीरदार खुद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे डकैतियाँ डलवाते या इन्हें संरक्षण देकर लूटके मालमें हिस्सा लिया करते।

बादशाहकी नजरके लिये लायी हुई सारी कीमती चीजें भातमें दे दी गयीं। छोटूकी पत्नीको जब चौधरीजी चुनरी ओढ़ाने लगे, तो उस गरीबकी आँखोंमें आँसू उमड़ पड़े।

चौधरीजीने सारी घटना सच-सच बता दी। बादशाह खुश होकर हँसने लगे। यद्यपि अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह केवल नाममात्रके बादशाह रह गये थे, किंतु वे अपने बाप-दादोंसे कहीं ज्यादा दरियादिल थे। स्वयं भावुक थे, शायर भी। कहने लगे—‘चौधरी रूपराम! आपने जो कुछ भी किया, उससे मा-बदौलत बेहद खुश हूँ। हम नाजिमको हुक्म फरमाते हैं कि खिराजकी पूरी रकम वसूलीके बतौर खजानेकी बहियोंमें जमा लिख दी जाय। छोटू मेहतरकी बेटीको दिया गया भात हमारी तरफसे समझा जाय और भतई—हम और तुम दोनों।’

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

विस्मृति—मोहमें आबद्ध मानव तीनों बातोंको भूल जाता है—अपना कर्तव्य, अपना स्वरूप, भगवान्। कर्तव्यकी विस्मृतिसे परिवार एवं समाजमें अशान्ति हो

जाती है। स्वरूपकी विस्मृतिसे वह अपने शरीरमें फँस जाता है। भगवान्की विस्मृतिसे वह नाशवान् जगत्में भटक एवं अटक जाता है, जन्म-मरणके कुचक्रमें फँस जाता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें आया है—अर्जुनको मोह हो गया, वह दुःख एवं सन्देहके दलदलमें फँस गया। भगवान्ने गीताका उपदेश दिया, उसका मोह मिट गया, उसको सब कुछ याद आ गया। उसने भगवान्से कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

(१८१७३)

इसका अर्थ है—हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है।

दुर्गति—मोहके कारण ही आप पूरे जीवनभर इन तीन चीजोंकी चिन्तामें आबद्ध रहते हैं और इनकी चिन्तामें ही शरीरका परित्याग करते हैं। संत एवं ग्रन्थ-वाणीके अनुसार अन्तिम समयमें पुत्र, पत्नी, लक्ष्मी (रूपये), भवनकी याद आनेसे मरनेके बाद बार-बार क्रमशः सूकर, वेश्या, साँप और प्रेतकी योनि मिलती है। **‘अन्त मति सो गति।’** अन्तिम समयमें भगवान्की स्मृतिसे कल्याण हो जाता है।

मोह नहीं है—किसी भी व्यक्ति एवं वस्तुको 'मेरा मानना' मोह नहीं है। परिवारजनोंके साथ रहना, वस्तुओंका सदुपयोग करना भी मोह नहीं है। आप सोचते हैं—यह मेरी माँ है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे पति हैं; यह मेरा मकान है, दुकान है, कारखाना है—ऐसा सोचना या मानना मोह नहीं है। यदि आप इनको मेरा नहीं मानेंगे तो आप इनके प्रति अपने कर्तव्यका पालन ही नहीं कर पायेंगे। मेरा मानकर ही बहनें अपने-अपने जन्मते बच्चोंको सँभालती हैं; मेरा मानकर ही माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियोंका लालन-पालन करते हैं, पढ़ाते हैं, योग्य बनाते हैं, विवाह करते हैं, मेरा मानकर ही परिवारजन अपने बीमार, वृद्ध एवं असमर्थ परिवारजनोंकी सेवा-सँभाल करते हैं; मेरा मानकर ही आप अपने व्यापार, उद्योग, सामान-सम्पत्तिको सँभालते हैं।

मोह है—जिनको आप मेरा मानते हैं, वे बने ही रहें, उनका वियोग न हो—इस इच्छाका नाम है—मोह। शरीर सदैव स्वस्थ ही रहे, बना ही रहे; परिवारजन बने ही रहें, सामान-सम्पत्ति बनी ही रहे—इस ‘इच्छा’ को ‘मोह’ कहते हैं। आप सोचते हैं—भूतकालमें इनसे मुझे बहुत सुख मिला था, ये मेरे काम आये थे, वर्तमानमें भी मुझे इनसे सुख मिल रहा है, ये मेरे काम आ रहे हैं; भविष्यमें भी इनसे मुझे सुख मिलेगा, ये मेरे काम आयेंगे—इसलिये ये सब बने रहें—इस इच्छाका नाम है—मोह। सोचिये, क्या इनको बनाये रखना आपके वशकी बात है। नहीं, कदापि नहीं। यदि ये नहीं बने रहें, इनका वियोग हो गया तो, आपको भीषण दुःख होगा। वियोग अवश्य होगा, या तो आप इनको पहले छोड़ेंगे या आपको ये पहले छोड़ेंगे।

मेरा नहीं है, प्रभुका है—मेरा नहीं है—इसका अर्थ है—मैं मालिक नहीं हूँ। प्रभुका है—इसका अर्थ है—प्रभु मालिक हैं। शरीर, परिवारजन, सामान-सम्पत्तिके मालिक प्रभु हैं, मैं नहीं। उन्होंने अपनी चीजें विशेष उद्देश्यसे कुछ समयके लिये मझे सौंपी हैं।

कारण—प्रभु मालिक क्यों हैं, मैं मालिक क्यों नहीं हूँ—इसके निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारण हैं—

(१) बनाना—इन तीनों चीजोंको प्रभुने बनाया है, मैंने नहीं। मैंने तो अपने शरीरको भी नहीं बनाया है।

(२) नियन्त्रण—रखनेकी दृष्टिसे इनपर पूर्णतया प्रभुका नियन्त्रण चलता है, मेरा लेशमात्र भी नियन्त्रण नहीं चलता है। मैं अपने शरीरको भी जबतक चाहूँ तबतक, जैसा चाहूँ वैसा, जहाँ चाहूँ वहाँ नहीं रख सकता।

(३) व्यवस्था—शरीरको जीवित रखनेके लिये तीन अत्यावश्यक वस्तुओंकी जरूरत होती है—श्वास, हवा, जल। शरीरको कुशलतापूर्वक रखनेके लिये अनेक सामान्य वस्तुओंकी जरूरत होती है, जैसे—भोजन, वस्त्र, आवास आदि। इन सबको बनाने एवं इनकी व्यवस्था करनेवाले प्रभु हैं, मैं नहीं। मनुष्य किसी भी

‘तुम इसे ले जा सकते हो। या फिर यह जहन्नुम जाय।’ कतेको उसने फेंक दिया और झपटकर आलेसे

Arma | MADE WITH LOVE BY Ayinash/Sh

इसका भार वहन कर सके।

‘महीनोंके पश्चात् आज मैं प्रसन्न हूँ!’ सतीशने मित्रकी ओर देखा। ‘तुम्हारी योजनापर विचार करनेको जी चाहता है!’

‘माधवके नेत्र अच्छे होनेतक विचार करनेका पूरा समय है तुम्हारे पास।’ रमाकान्त हँसते हुए बोले—

‘अपने कमरेकी चाभी मुझे दे दो! मैं उसे खोल आऊँगा! तुम्हारी नयी दरी मुझे पसन्द है। उस मनहूस शीशीको जिसे तुम दरीके नीचे छिपा आये हो, अब तुम पा नहीं सकते!’

‘आवश्यकता हुई तो दूकानोंमें वह फिर मिल जायगी!’ सतीश हँस पड़ा। ‘मैं सायंकाल फिर आ जाऊँगा और शीशी तुम्हें दे दूँगा।’ वह कैसे बराबर कई दिनों यहीं टिके रहनेका निमन्त्रण स्वीकार कर ले!

‘तुम माधवको अधिक रुलाना पसन्द नहीं कर सकते!’ रमाकान्तका आग्रह सकारण था। ‘चाभी मुझे दो! मैं तुम्हारी दरीके लिये झगडूँगा नहीं!’ सतीश भी समझता है कि अब उसके लिये धर्मशाला जाना आवश्यक नहीं।

\times \times \times

$$[\gamma]$$

‘पिताजीने मुझे बुलाया है!’ सतीशको आश्चर्य था कि स्वयं विमाता उसे लेने आयी थीं। वह अपने मित्रसे विदा हो रहा था। ‘उनका आग्रह है कि मैं पुनः परीक्षामें बैठूँ।’

‘तुम घर जाओ!’ रमाकान्तने उसे समझाया।
‘पिताजीको तुम्हें सन्तुष्ट करना ही चाहिये!’

‘वे इस प्रकार कभी मुझे पत्र न लिखते!’ स्वयं सतीशको बार-बार इधर-उधर घूमना पड़ा है।

‘तुमने कभी उनको या माताजीको प्रसन्न करनेका प्रयत्न भी किया?’

‘कदाचित् कभी नहीं!’ अब उसे स्मरण आ रहा है, जब यह नवीन माताजी आयी थीं। उन्होंने उसे गोदमें लेकर पुचकारा था। भाग गया था वह। बराबर वह मातासे पृथक् रहता था। पितासे भी पता नहीं क्यों उसे

चिढ़ हो गयी थी। धीरे-धीरे वह उनकी अवज्ञा करने लगा था।

‘लेकिन मैं घरसे चला गया और किसीने मेरी कोई खोज-खबर नहीं ली!’ सतीशको यही बात सबसे अधिक खटकती है। जितना शारीरिक कष्ट उसे उन सात दिनोंमें मिला है, उससे कहीं अधिक मानसिक कष्ट भोगता रहा वह।

‘तुमने स्वयं द्वार बन्द कर लिये और चाहते हो कि लोग तुम्हारे पास आयें!’ रमाकान्तने संकेतसे समझाया। पता लगानेका कोई सूत्र सतीशने छोड़ा ही कहाँ था। यदि अचानक उनके नौकरने घरसे कामपर आते समय उसे धर्मशालामें जाते न देख लिया होता!

‘रमा बेटा! तू अब इसे छुट्टी दे दे!’ सतीशकी विमाता ऊपर आ गयी थीं। ‘सतीश, चल भैया! अब हम कुछ न कहेंगे! तू माता-पितासे इतना अप्रसन्न हो जायगा, यह तो हमने कभी सोचा ही नहीं था। तेरी इच्छा हो तो फिर परीक्षा देना, न हो तो कोई बात नहीं!’ जैसे सतीश छोटा बच्चा ही हो अभी। वे उसके सिरपर पीछे खड़ी होकर हाथ फेर रही थीं।

‘यह पिताको प्रसन्न नहीं करेगा तो जगत्पिता इसपर प्रसन्न रहें, ऐसी आशा ही कैसे कर सकता है।’ सतीश इधर धर्मके प्रति आस्था खो बैठा है। रमाकान्तको यह बात बहुत खटकती है।

‘तू अपनी तोतारटन्त रहने दे!’ सतीशने कृत्रिम रोष दिखाया।

‘तुम दोनों लड़ो मत!’ माता तो माता ही है ‘अभी तो घर चलो!’ उन्होंने दोनों मित्रोंको आमन्त्रित किया!

‘चलो, मैं तुम्हें पहुँचा आऊँ!’ रमाकान्त उठे।
‘तुमने पिताके लिये धर्मशाला पहुँचनेका मार्ग बन्द कर दिया था और परम पिताके लिये हृदयका द्वार अबतक बन्द कर रखा है!’ जैसे कोई चेतावनी दी जा रही हो।

‘पिताका द्वार पुत्रके लिये सदा खुला रहता है!’
रमाकान्तकी माता आ रही थीं! उन्होंने ही कहा था।

‘बहन, मैं रमाको लिये जा रही हूँ!’ सतीशकी माताने अनुमति ली।

‘मैं धर्मशालाके कमरेका द्वार बन्द करके बैठने तो जा नहीं रहा हूँ।’ हँसकर रमाकान्तने सबको हँसा दिया।

 $\times \qquad \qquad \qquad \times \qquad \qquad \qquad \times$

[4]

‘यह सब कबतक समाप्त होगा!’ अखण्ड कीर्तन-भवनको देखकर सतीशचन्द्रजीने एक ही प्रश्न पूछा था। कहीं कथा, कहीं कीर्तन, कहीं पाठ। एकान्त शान्त झोपड़ियोंमें सीधे सरल साधक मौन रहते हैं, साधारण भोजन करते हैं, जप, पाठ, पूजामें ही उनका समय व्यतीत होता है। भवनके व्यवस्थापकने इतने प्रसिद्ध नेताके आगमनपर हर्ष प्रकट किया। उनका स्वागत हुआ। सब स्थान उन्हें दिखाये गये। पूरी व्यवस्था समझायी गयी। ‘यहाँके लोग हैं तो अच्छे, पर व्यर्थ समय नष्ट करते हैं। समाजकी सेवामें लगें तो देशका कुछ लाभ भी हो।’

‘जीवनमें शान्ति न हो तो समाजको शान्ति दी नहीं जा सकती!’ व्यवस्थापक अपने अतिथिसे विवाद नहीं करना चाहते थे। सतीशने उनके प्रतिवादपर ध्यान नहीं दिया।

‘जीवनमें शान्ति?’ वहाँसे आनेपर भी उसके मनमें यह वाक्य बराबर खटकता है। उसने लोगोंके लिये कष्ट उठाया, जेल गया, पीटा गया और अनेक यातनाओंके पश्चात् अब उसे नेतृत्व प्राप्त हुआ। अधिकार मिला उसे। अब लोग उसकी समालोचना करते हैं। उसे स्वेच्छाचारी बताया जाता है। उसके पक्षमें बहुमतको अल्पमतमें बदलनेका प्रयत्न करते हैं लोग। कहाँतक वह लोगोंके लिये ही कष्ट सहे। वह भी मनुष्य है, उसकी भी सुविधा है, उसे भी सुख चाहिये।

‘सुख—सुख कहाँ है?’ कितना अशान्त, कितना चिन्तित रहना पड़ता है उसे। पहले लोग उसे चाहते थे, उससे प्रेम करते थे। अब लोग उसके विरोधी होने लगे हैं। ‘शान्ति—ईश्वर?’ पर ईश्वर होता तो क्या वह उस परीक्षामें अनुत्तीर्ण हो गया होता! कितनी प्रार्थना की थी उसने। कितना रोया था। हनुमान्जीको लड्डू चढ़ाये,

शंकरजीको दूध चढ़ाया, पाठ किये और जप किया। सब व्यर्थ—वह उत्तीर्ण नहीं हुआ। ‘यह पूजा-पाठ कुछ नहीं। कोई ईश्वर नहीं!’ एक प्रतिक्रिया उठ खड़ी हुई उसी दिन उसके मनमें।

‘यदि उस समय उत्तीर्ण हो गया होता? आज किसीके यहाँ नौकरी करता!’ आज उसे अपनी स्थितिपर सहसा आश्चर्य हुआ। इस उच्चपदको पानेमें उसका अनुत्तीर्ण होना और पिताके आग्रहपर भी फिर परीक्षा न देना कारण हुआ। उसी असफलताने तो सेवा-मार्गमें प्रवृत्त किया। ‘क्या भगवान् हैं?’ आज फिर उसका हृदय पूछ रहा है। ‘मेरी वह प्रार्थना सुनी गयी थी? मेरी पूजा स्वीकृत हुई थी?’ उसे लगता है, उस अज्ञात शक्तिने उसे कितना बड़ा वरदान दिया। ‘मैं मूर्ख हूँ! मैं कृतघ्न हूँ!’

‘कहाँ हैं भगवान्?’ पर उसका हृदय आज बदल गया है। ‘भगवान् कहाँ नहीं हैं?’ स्वयं अपने व्याख्यानोंमें वह यही तो बार-बार कहता है। ‘किनपर शासन करता है वह? किनपर अधिकार प्रकट करता है?’

‘पिताका द्वार पुत्रके लिये सदा खुला रहता है!’ रमाकान्तकी माताके शब्द उसे स्मरण आते हैं और स्मरण आते हैं रमाकान्तके शब्द—परमपिताके लिये द्वार खोलो! तुम अपने कुत्तेके भागनेके डरसे द्वार बन्द करोगे तो मित्र आयेंगे कैसे? हृदयके द्वार खोलो! सेवा, स्नेह दो दूसरोंको! प्रभुके लिये उन्मुक्त करो उसे! आनन्द और शान्ति उसमें तभी आयेंगे!’

‘मैंने द्वार बन्द कर दिया अधिकार लेकर!’ वह सोचता है ‘दुःख, अशान्ति धर्मशालाके बन्द कमरेमें भी तो मुझे मिले थे! द्वार खोलना है। जगत्पिता! तू मेरे हृदयमें आ और मुझे अपनी मंगल शान्तिमें आने दे!’ देशका एक उच्च नेता इस प्रकार रो सकता है, यह उसका निजी मन्त्री आश्चर्यसे देखता रहा; किंतु आज उसे किसीकी चिन्ता नहीं थी। द्वार उन्मुक्त हो गया था और शीतल वायुकी भाँति सुखद अनुभूति वहाँ व्याप्त हो रही थी।

श्रीकृष्णका पक्ष यह है कि जहाँपर विकृति है, वहाँपर कोई भी सम्बन्ध क्यों न हो, उसे तो नष्ट कर ही देना चाहिये; क्योंकि विकृति-तो-विकृति ही है।

गान्धारीके मनमें गर्व है कि मैं तो पतिव्रता हूँ। मैं अपने पुत्रको मरने नहीं दूँगी। यही मोह है। मोह कितना बलवान् है! सती गान्धारी इसी मोहके आक्रमणसे नहीं बचीं। उनको विश्वास हो गया कि वे अपने पातिव्रत्यके बलपर दुर्योधनको मरनेसे बचा लेंगी।

गान्धारी भी अपने धर्मके द्वारा यही करना चाहती हैं, जो संसारमें कभी नहीं हुआ। वे दुर्योधनसे कहती हैं—‘बेटा! तू वस्त्ररहित होकर मेरे सामने आ जाना, मैं अपनी आँखोंसे पट्टी खोलकर तुझे अमर बना दूँगी!’ दुर्योधन तो आनन्दमें डूब गया, पर जब यह समाचार पाण्डवोंके खेमेमें पहुँचा, तो वहाँ मायूसी छा गयी। सोचने लगे कि जब गान्धारी-जैसी पतिव्रताने ऐसा व्रत ले लिया है, तब क्या होगा? पर श्रीकृष्ण मुसकराकर बोले—अगर दुर्योधन वस्त्ररहित होना जानता होता और गान्धारी आँखोंकी पट्टी खोलना जानती होतीं, तो यह अनर्थ ही क्यों होता? दुर्योधन नग्न होना कहाँसे जाने, वह तो दूसरोंको नग्न करना जानता है। उसने द्रौपदीको नग्न करनेकी चेष्टा की, इसीसे महाभारतकी लड़ाई हुई। स्वयं नग्न होनेका तात्पर्य है अपने दोष देखना और उसे स्वच्छ करनेकी चेष्टा करना तथा दूसरोंको नग्न करनेका अर्थ है—दूसरोंके दोष देखना, दूसरोंको नीचा दिखानेकी चेष्टा करना। दुर्योधनमें आत्मदोष-दर्शनकी प्रवृत्ति ही नहीं है, वह केवल परदोष-दर्शन ही करता है। अतः वह नग्न कैसे हो सकेगा? उधर गान्धारी पतिव्रता तो हैं, पर उन्हें आँखोंकी पट्टी खोलना कहाँ आता है? यह सही है कि उनकी आँखोंमें ऐसी शक्ति है कि चाहें तो वे किसीको भस्म कर दें और चाहें तो किसीके शरीरको वज्र बना दें, पर वे आँखोंको खोलना जानें तब न? यदि जानती होतीं तो जिस समय भरी सभामें दुर्योधन द्रौपदीको नग्न करवा रहा था, वे धमकी दे सकती थीं कि दुर्योधन! यदि तुम ऐसा अन्याय करोगे तो मैं

आँखोंकी पट्टी खोल तुम्हें भस्म कर दूँगी। उससे सारा पाप ही समाप्त हो जाता। पर यह कैसी विडम्बना है कि गान्धारी पापको अमर बनानेके लिये आँखोंकी पट्टी खोलनेका व्रत लेती हैं! अपने पातिव्रत्यके बलपर उसे अमर बनानेपर तुली हुई हैं, जो दूसरोंके पातिव्रत्यको नष्ट करनेपर तुला रहता है! पर क्या वे अपनी इच्छामें सफल हो पायीं?

धर्मके साक्षात् घनीभूतरूप श्रीकृष्णके रहते क्या अधर्म अमर बन सकता था? विजय तो धर्मकी ही होनी थी। ‘महाभारत’ घोषणा करता है—‘यतो धर्मस्ततो जयः।’ दुर्योधन भी सोचता था कि जीत उसकी होगी; क्योंकि ब्रह्मचर्य, तप, दान, पुण्य और पातिव्रत्यरूप धर्म उसीकी तरफ है। पर ‘महाभारत’ में एक वाक्य और कह दिया गया—‘यतः कृष्णस्ततो धर्मः।’ जिधर कृष्ण हैं, उधर धर्म है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिधर कृष्ण, उधर धर्म और जिधर धर्म, उधर विजय; पर विजय तो कौरव पक्षकी ओर दिखायी पड़ रही है—दुर्योधन नग्न होकर अपनी माता गान्धारीके पास अमर बननेके लिये जा रहा है, पर क्या गान्धारी दुर्योधनको अमर बना पायीं? किंवदन्ती है कि श्रीकृष्णकी प्रेरणासे नारद दुर्योधनके सामने आ जाते हैं। वह सारे खिड़की-दरवाजोंको बन्दकर नग्न होकर अपनी माँके पास सावधानीसे जा रहा है कि कहीं कोई उसे देख न ले। जब वह नारदको देखता है तो लजाकर बैठ जाता है। अब, सन्तके सामने कहाँ उसे अपना दोष प्रकट करना चाहिये था और कहाँ लजाकर छिपनेकी चेष्टा करता है। नारद मुसकरा पड़े! बोले—भलेमानुस! जब मेरे सामने इतना संकोच कर रहे हो, तब माँके सामने क्या होगा, कुछ तो कपड़ा पहन लो, क्या बढ़िया सलाह है, यह एक व्यावहारिक सलाह है—कुछ ढँक लेना और कुछ प्रकट करना। नारदकी ऐसी सलाह दुर्योधनके स्वभावके अनुकूल ही थी और दुर्योधन ही क्यों, वह हम सबकी प्रवृत्तिके अनुकूल बात है तो जब दुर्योधन कमरमें कपड़ा लपेटकर माँके पास पहुँचा, माँने आँखोंकी पट्टी खोलकर उसकी ओर देख लिया।

दुर्योधनका सारा शरीर वज्र हो गया, केवल कमर ही जिसपर कपड़ा लिपटा था, दुर्बल रह गयी। श्रीकृष्णने मुसकराकर कहा—देखो, पतिव्रताने अधर्मको अमर बनाना चाहा, पर अधर्म तो अमर हुआ नहीं, बल्कि पतिव्रताने अधर्मके मरनेका उपाय जरूर बता दिया। पहले तो सोचना पड़ता कि दुर्योधनको मारनेके लिये उसपर कहाँ वार किया जाय, पर अब तो पता चल गया कि कमरपर ही वार करना होगा।

तो हमारा ब्रह्मचर्य, हमारा तप, हमारा दान और हमारा पुण्य यदि केवल मोह और अहंकारकी सृष्टिके लिये हो, तो वह धर्म नहीं, अधर्म है और ऐसे अधर्मका

शीघ्र नष्ट होना ही उचित है। रामायणमें भी हम यही बात देखते हैं। विभीषणकी तपस्या, उनकी साधना रावणको ही बल प्रदान करती थी। जबतक उन्होंने रावण और कुम्भकर्णसे नाता तोड़कर हनुमान्जीके साथ नाता नहीं जोड़ लिया, तबतक उनका धर्म अधर्मको ही पुष्ट करता था। धर्मकी कसौटी यह है कि जीवनमें वैराग्य आना चाहिये—‘धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।’

(रा०च०मा० ३।१६।१) धर्मसे जब वैराग्य आये तो समझ लीजिये हनुमान्जी आ गये और यदि धर्म करते-करते मोह और अहंकार आये, तब समझ लेना चाहिये कि वह धर्म नहीं, घोर अधर्म है।

साधक कमलाकान्त

(श्रीरामलालजी)

शस्यश्यामला बंगभूमिके निवासियोंके हृदयमें भगवती कालीकी उपासनाकी सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती है। महात्मा रामप्रसाद सेन, साधक कमलाकान्त और श्रीरामकृष्ण परमहंसने शक्तिकी उपासना-समृद्धि बढ़ानेमें असाधारण योगदान दिया। तीनों-के-तीनोंने जगदीश्वरीके चरण-कमलोंमें मन संस्थितकर त्राणकी याचना की। कमलाकान्तने निवेदन किया—

उमे! त्राण दे मा शिवे! त्राण दे।

तृषित चातक मत निरखि नव घन तव चरण गो ।
आमि दुराचारी, शरण तोमारि, निस्तार ए घोर भवे ॥
तुमि जननी, जनम-हारिणी, सृष्टि-स्थिति-संहारिणी ।
हे कङ्काले! शशधरभाले! गिरिजा भवानी भवे ॥
जया प्रचण्डा शमन-दलनी 'कमलाकान्त' कृतान्तभये ।

ब्राहि महेशि! विगलितकेशि, तरि भवराणि, भवे ॥

‘हे माँ पार्वती! उमादेवि! आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं प्याससे विकल चातककी तरह आपके चरणरूप नवजलदकी ओर आशापूर्ण दृष्टिसे देखता हूँ। मैं दुराचारी पापी हूँ, फिर भी आपके शरणागत हूँ; इस भीषण संसारसे आप मुझे उबार लीजिये। हे माँ!

आप मोक्षदायिनी हैं, आप सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली महाशक्ति हैं। आप मुण्डोंकी माला धारण करनेवाली हैं, आपके भालमें बालचन्द्र शोभित है; आप पार्वती हैं, भवानी हैं, भगवान् शिवकी अभिन्ना आत्मा हैं; आप जया हैं, आप विकरालरूपधारिणी—प्रचण्डा हैं। आप ही कालका भी संहार करनेवाली महामाया हैं, मुझे यमके त्राससे उबार लीजिये। हे खुले केशोंवालीं करालवदना! शिवकी हृदयेश्वरी! मैं मृत्युरूपी संसार-सागरसे आपकी कृपासे पार उतरनेमें समर्थ हूँ, मेरी रक्षा कीजिये।' साधक कमलाकान्तने जगदीश्वरीके चरणोंमें अपने हृदयकी भक्ति उँड़ेलकर तथा उनकी आराधनाकर भवसागरमें मृत्युभयसे त्राण पाया।

साधक कमलाकान्तका जन्म बर्दवान जनपदमें भगवती गंगाके तटपर स्थित अम्बिका कालना ग्राममें बंगीय संवत् ११७० में एक ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था। पाँच सालकी ही अवस्थामें उन्हें पिता छोड़कर परलोक चले गये। कमलाकान्त दो भाई थे। माँने बड़े स्नेहसे उनका पालन-पोषण किया। उनकी जीविका

कमलाकान्त कथा, मारे बलि मनेर व्यथा, जपेर माला, झूलि, काँथा, जपेर घरे रड़ल टांगा ॥

मुझे तो एकमात्र आपके चरणोंका ही भरोसा है। कभी-कभी यह बात मनमें आती है कि धन और परिवारके लोग रहेंगे क्या? क्या वे इसी तरह सदा बने रहेंगे? विषय-विषममें अनुरक्त होनेके नाते मेरे दिन काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओंकी अधीनतामें बीत गये; मैं अपने ही कर्मोंके दोषसे सारी यातनाएँ सहता हूँ। जो पुण्यात्मा है, वह साधनके द्वारा आपके श्रीचरणकी प्राप्ति कर पाता है; किंतु मैं तो पापी और अधम हूँ, साधनहीन हूँ। मेरा तो आपको छोड़कर कोई दूसरा है ही नहीं। मैं तो यही आशा लगाकर बैठा हूँ कि मैं आपके चरणोंका दास बनूँगा; परंतु मनपर मेरा अधिकार नहीं है। वह अत्यन्त चंचल है। मैं आपका दास भी बननेयोग्य नहीं हूँ।

महात्मा कमलाकान्तका सम्पर्क चार व्यक्तियोंके लिये बड़े महत्त्वका कहा जाता है। वे थे विश्वेश्वर डाकू, शिष्य केनाराम चट्टोपाध्याय और बर्दवानके महाराजा तेजचौंद तथा उनके पुत्र युवराज प्रतापचौंद। साधक कमलाकान्तके चरणदेशमें उन चारोंकी प्रणति अपने-अपने ढंगसे निराली थी। विश्वेश्वर—विशु प्रसिद्ध डाकू था। एक समयकी बात है। कमलाकान्त गैरिक परिधान धारणकर खड्गेश्वरी नदी पारकर चान्नासे सात-आठ कोसकी दूरीपर स्थित अमरारगढ़ स्थानपर अपने शिष्य केनारामसे मिलने जा रहे थे। कई गाँवोंको पारकर ओड़ग्रामके निकट पहुँचते ही उन्होंने देखा कि कई लोग उनका पीछा कर रहे हैं। शाम हो गयी थी। पश्चिममें लालिमा थी। सूर्य अस्ताचलको जा चुके थे। वे तनिक भी भयभीत नहीं हुए। वे गीत गाकर जगज्जननीका स्मरण करने लगे—

आर किछु नाइ श्यामा, तोमार केवल दुटि चरण रांगा।
शुनि ताओ नियोछेन त्रिपुरारी, अतेव हलेम साहस भांगा ॥
ज्ञातिबन्धु सुत-दारा, सुखेर समय सबाइ तारा।
विपद-काले केउ कारो नय, घरवाड़ी ओड़गाँयेर डांगा ॥
निज गुणे यदि राख, करुणा-नयने देख,
नड़ले जप करे ये तोमाय, पाओया से सब कथा भूतेर सांगा।

कमलाकान्तेर कथा, मारे बलि मनेर व्यथा, जपेर माला, झूलि, काँथा, जपेर घरे रड़ल टांगा ॥

‘हे श्यामा! आपके लाल-लाल कोमल दोनों चरणोंके सिवा मेरे लिये और कुछ भी नहीं है। सुनता हूँ कि उन्हें भगवान् शंकरने पहलेसे अपने अधिकारमें कर लिया है, मैं इससे हतोत्साह हो उठा हूँ। ये सब जाति-भाई, सुत-स्त्री आदि सुखके समयके साथी हैं, विपत्तिके समयमें कोई किसीका भी नहीं होता। घर-बाड़ी तथा इस ओड़गाँवकी ऊँची भूमि भी अन्त समय मेरा साथ नहीं देगी। आप अपने स्वभाव-गुणसे ही अपना बना लेती हैं। यदि इस गुणके वशीभूत होकर मुझे अपना लेती हैं तो मुझपर कृपादृष्टि कीजिये। जप करनेसे आपकी प्राप्ति नहीं हो सकती; यह तो भूतको सिद्ध करनेकी-सी बात है, मुख्य वस्तु तो आपकी करुणा है। माँ! मैं तो अबोध बालक हूँ, केवल माँसे ही अपने मनकी व्यथा कहता हूँ। माँकी कृपा मिलेगी ही। जपमाला, झोली, गुदड़ी तो जपके घरमें टँगी-की-टँगी ही है। मुझे तो आपकी ही करुणाका भरोसा है।’

विशु-पर उनके उपर्युक्त भक्तिपूर्ण गानका प्रभाव पड़ा। वह विमुग्ध हो गया। ‘आप कौन हैं?’ विशुका प्रश्न था। साधक कमलाकान्तने कालीके किंकरके रूपमें अपना परिचय दिया।

‘कमल ठाकुर!’ विशु चकित हो गया। दौड़कर उसने कमलाकान्तके चरण पकड़ लिये। विशु डाकूके साथी आश्चर्यमें पड़ गये। विशुने साथियोंसे कहा कि ‘मैं तुम लोगोंका साथ नहीं दे सकता। कमल ठाकुरके चरण जीवनभर नहीं छोड़ सकता। कालीका नाम ही मेरा मन्त्र है।’ कमलाकान्तके भी समझानेपर वह घर नहीं गया और आजीवन उन्हींकी सेवामें रहकर उसने जगदीश्वरीकी आराधना की। बंगालका अभिनव अंगुलिमाल सदाके लिये धर्म और वैराग्यकी शरणमें आ गया, शक्तिका उपासक हो गया।

केनाराम चट्टोपाध्याय अमरारगढ़के निवासी थे।

कमल ठाकुरमें उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा और निष्ठा थी। धूलि सिरपर चढ़ाकर उन्हें प्रणाम किया और चले गये।

वे कभी-कभी चान्ना आकर विशालाक्षीके मन्दिरमें साधक कमलाकान्तसे मिला करते थे। कमल ठाकुर केनारामको अपनी कृपा और स्नेह-वृष्टिसे कृतार्थ करनेके लिये अमरारगढ़ जाया करते थे।

बर्दवानके महाराजाकी साधक कमलाकान्तके चरणदेशमें महती अभिरुचि थी। महाराजाके बड़े अनुरोधपर उन्होंने बर्दवानमें बाँका नदीके तटपर स्थित कोटालहाटमें नवनिर्मित श्यामा-मन्दिरमें रहना स्वीकार कर लिया। एक दिन महाराजाके मनमें यह सन्देह उठनेपर कि मिट्टीकी मूर्तिसे किस तरह देवी-शक्तिका आविर्भाव हो जाता है, कमल ठाकुरने समझाया कि सभी वस्तुओंमें महाशक्तिका अस्तित्व है, इसका साक्षात्कार करना अनेक जन्मोंके पुण्यका फल है, जन्म-जन्मके भाग्योदयका प्रतीक है। सच्चिदानन्दरूपका 'सोऽहं' भावमें उदय होनेपर महाशक्तिका आविर्भाव समस्त वस्तुओंमें प्रतीत होता है।

साधक कमलाकान्तका जीवन पूर्णरूपसे जगदम्बाके चरणोंमें समर्पित था। एक बार उनके अस्वस्थ हो जानेपर महाराजा तेजचाँद उन्हें देखने गये। वे मिट्टीसे बने कच्चे घरमें रहते थे। महाराजाकी इच्छा थी कि घर पक्का बन जाय तो शरीर ठण्डक आदि ऋतु-विकारोंसे कम प्रभावित होगा। कमल ठाकुरने बड़े ही संतोषसे कहा कि 'मेरी माँ श्मशानमें रहती हैं, कंकाल ही उनके आभूषण हैं। अब आप ही सोचिये कि मुझे पक्के घरकी आवश्यकता है या नहीं।' इसपर महाराजाने और आग्रह नहीं किया। चलते समय केवल यह निवेदन किया कि यदि किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो सेवामें अविलम्ब भेज दी जाय। कमल ठाकुरने कहा कि 'एक मिट्टीका कोसा चाहिये; पहला थोड़ा-सा फूट गया है, इसलिये पानी पीते समय जल गिर जाता है।' महाराजा

कमलाकान्तके जीवनमें बड़ी-बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाओंका समावेश पाया जाता है। एक समयकी बात है, वे अमरारगढ़में थे। केनाराम कहीं बाहर गये थे। कमलाकान्त श्यामाघरमें बैठकर देवीका चिन्तन कर रहे थे। केनारामकी लड़कीने कहा कि 'बाबा! आज जलानेकी लकड़ी नहीं है।' उसे इस बातका पता नहीं था कि उसके पिता कहीं बाहर चले गये हैं। कमल ठाकुर विशुको साथ लेकर ईंधन लेने चल पड़े। हाथमें टाँगी थी। लौटते समय लोगोंने देखा कि हाथमें टाँगी लेकर ठाकुर आगे-आगे चल रहे हैं और विशु कन्धेपर ईंधन रखकर उनके पीछे-पीछे आ रहा है। गाँवके लोग इस असाधारण घटनासे आश्चर्यमें पड़ गये। चारों ओर इसी बातकी चर्चा थी। केनारामने घर आकर बड़ा पश्चात्ताप किया।

अपने कोटालहाटवाले निवास-स्थानमें ५३ सालकी अवस्थामें बँगला सम्वत् १२२३ में उन्होंने महाप्रस्थान किया। उनका एक पद है—

आमार गति कि हवे, तारा जाने, मा जाने।

तारा बिने आर, इहकाल, परकालेर कथा के जाने ॥

आमि यत निपुण साधने, विदित जननीर चरणे।

कत दिने हवे त्राण, कमलाकान्तेर ए मोर भवबन्धने ॥

'मेरी क्या दशा होगी, यह बात तारा जानती है, माँको भी ज्ञात है। इस समयकी एवं दूसरे समय—भूत, भविष्यकालकी बात माँके सिवा दूसरा कौन जान ही सकता है। मैं साधनमें कितना सफल हूँ, यह बात जननीके चरणोंपर प्रकट है। न जाने कितने दिनोंमें इस भवबन्धनसे मेरा उद्धार होगा?'

बंगीय शक्ति-साधनाके क्षेत्रमें साधक कमलाकान्तका नाम अमर है। उन्होंने जगज्जननी जगदीश्वरी महाकालीके

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवद्भक्तिसे हानि नहीं होती

प्रिय बहन! आपका पत्र मिला। आप लड़कपनसे ही यथाशक्ति पूजा-पाठ तथा जप करती हैं। आपके दो पुत्र चले गये। अब तीसरा बच्चा हुआ है। पर आपकी माताजी कहती हैं कि 'इस पूजा-पाठके कारण ही पहले बच्चे मर गये थे। तुम्हारे पूजा-पाठसे इस बच्चेका भी अनिष्ट हो जायगा।' सो यह उनका भ्रम है। भलेका फल कभी बुरा नहीं हो सकता। भगवान्की भक्ति, भगवान्के नाम-जप तथा अपने घरमें भगवान्की पूजा करनेका सभीको अधिकार है। स्त्री हो या पुरुष—यह सभीके लिये मंगलकारी कार्य है। भगवान्की भक्तिसे पुत्रोंके मरनेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण सब प्रारब्धके फल हैं। भगवद्भक्तिसे तो सकामभाव होनेपर ये प्रारब्धके विधान उलटे टल सकते हैं। न टलें तो भी अमंगल तो होता ही नहीं। मनुष्य-जीवनकी सफलता ही भगवान्की भक्तिमें है। आपको बड़ी नम्रता, विनय तथा सेवा करके माताजीको यह बात समझानी चाहिये। विवाद-झगड़ा कभी नहीं करना चाहिये।

फिर भी यदि माताजीको इससे बहुत ही दुःख होता हो तो आप धीरे-धीरे अपनी भक्तिके भावको मनके अन्दर ले जाइये। मनसे आप भगवान्को याद करेंगी, उनकी मानसिक पूजा करेंगी तो उससे कोई आपको रोक नहीं सकता। न किसीको पता ही लग सकता है। फिर किसीकी अप्रसन्नताका कोई प्रश्न ही नहीं रह जायगा। और वास्तवमें जितना महत्त्व मानसिक भावोंका है, उतना बाहरी पूजाका है भी नहीं। पर इसका यह अर्थ नहीं मानना चाहिये कि मैं बाहरी पूजाका निषेध करता हूँ। बाहरी पूजा भी अवश्य करनी चाहिये, परन्तु भीतरीके साथ-साथ। और जहाँ-कहीं उससे कोई उपद्रव खड़ा होता हो, (चाहे वह किसीकी भूलसे हो)

वहाँ तो ज्यादा अभ्यास भीतरीका ही करना चाहिये।

अन्तमें आपकी माताजीसे भी मेरी प्रार्थना है कि वे इस वहमको छोड़ दें। भगवान्की भक्ति और पूजा स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं और भगवान्की भक्ति-पूजासे लोक-परलोकमें कल्याण ही होता है। उसको रोकना, भक्ति करनेवालेका विरोध करना पाप है और उससे परिणाममें दुःख होता है। घरवालोंका तो यह परम धर्म होना चाहिये कि वे समझाकर, विनय करके, सेवा करके सभी घरवालोंको भगवान्की भक्तिके मार्गमें लगायें। वही सच्चा घरका मित्र, बन्धु और हितैषी है; जो अपने घरवालों, मित्रों और बन्धुओंको भगवान्की ओर लगाता है—

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।

जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥

शेष भगवत्कृपा।

(२)

जगत् दुःखकी खान है

प्रिय भाई, सप्रेम हरिस्मरण। भैया! भगवान्को छोड़कर यह जगत् दुःखकी खान है। भगवान्ने इसे 'दुःखयोनि' बतलाया है। दुःखोंसे छूटनेका एक ही उपाय है—बस, यही कि अपनेको भगवान्के प्रति सब प्रकारसे समर्पण कर देना। तभी सच्चा सुख, अपार शाश्वती शान्ति मिल सकेगी। संसारकी नजरमें परिस्थिति पलटनेसे दुःख नहीं मिटेगा, दुःखोंके हेतुमात्र बदल जायँगे। दुःखालयमें दुःख तो रहेगा ही। भगवान्की इस नाट्यशालामें चतुर एक्टरकी भाँति खेलते रहो। भगवान् जैसा कुछ स्वाँग दें, जो कुछ प्रदान करें, उसीको सानन्द सिर चढ़ाओ। इस पार्थिव जीवनमें भगवान्को छोड़कर कुछ भी नित्य और आनन्द नहीं है। भगवान्से ही आनन्दका झरना बहता है, उसमें नहाओ, कृतार्थ हो जाओगे। ये भावुकताके शब्द नहीं हैं, सत्य तथ्य है।

तुम्हारे शरीर और मन स्वस्थ होंगे। भगवान्का

स्मरण किसी भी बुद्धिसे अवश्य करते रहना।

शेष प्रभुकृपा ।

(३)

ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके प्रश्नोंके संक्षिप्त उत्तर निम्नलिखित हैं—

१. ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है। तुकाराम, नामदेव, सूरदास, तुलसीदास, गौरांग महाप्रभु, श्रीरामकृष्ण परमहंस आदिपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। जो भी भगवान्‌का सच्चा भक्त हो, वह आज भी भगवान्‌के दर्शन प्राप्त कर सकता है।

२. लक्ष्मी और कीर्ति तो प्रारब्धजन्य पुण्यके फलस्वरूप बढ़ती हैं। इस जीवनमें जो दम्भ, छल, कपट आदि करते हैं, वे कोई भी हों और लोग उन्हें कुछ भी कहें या समझें, अपने कर्मोंके फलस्वरूप अनन्त दुःख तो आगे चलकर उन्हें भोगने ही पड़ेंगे।

३. धन, कीर्ति, स्वास्थ्यादि भगवान्की प्रार्थनासे भी मिल सकते हैं। प्रार्थनाके लिये न कोई प्रकार है, न स्थान और न समय। पूर्ण विश्वाससे, अनन्यभावसे जो सहज कातर-प्रार्थना होती है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाती। प्रार्थना हृदयसे उठती है, उसे पुस्तकके द्वारा सीखा नहीं जाता। बँधे शब्द प्रार्थना नहीं हैं। भगवान्के प्रति अपने हृदयके सच्चे भावोंका पूर्ण विश्वाससे निवेदन करना ही प्रार्थना है।

४. सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये। सन्ध्या न करनेसे प्रत्यवाय (एक प्रकारके दोष)-की प्राप्ति होती है।

५. मनकी एकाग्रता तो अभ्याससे होती है। धैर्य एवं नियमपूर्वक अभ्यास करते रहनेसे धीरे-धीरे मन एकाग्र होने लगेगा।

६. आत्महत्या बड़ा भारी पाप है। इससे किसी कष्टकी निवृत्ति नहीं होती। प्रारब्ध तो आगे भी भोगना ही पड़ेगा और आत्महत्याके पापके फलसे वह और घोरतर हो जायगा। अतः आत्महत्या-जैसी बात तो

मनसे निकाल ही देनी चाहिये । भगवान् परम दयालु हैं ।

उनकी कृपापर पूर्ण विश्वास करके उन दयामयसे प्रार्थना करना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

$$(\gamma)$$

विचित्र प्रश्न

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण । आपका कृपापत्र मिला । धन्यवाद ! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१. भगवान्को किसने उत्पन्न किया? आपका यह प्रश्न बड़ा विचित्र है। शास्त्रोंमें भगवान् अजन्मा, अविनाशी, नित्य, सनातन एवं सबके मूल तथा सर्वाधार होनेसे स्वयं निर्मूल, आत्ममूल, निराधार, आत्माधार एवं परात्पर कहे गये हैं—‘**स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः।**’ उन्हींसे सबकी उत्पत्ति होती है। उनकी कभी किसीसे उत्पत्ति नहीं होती। जो वस्तु सदा रहनेवाली है, उसकी उत्पत्ति किससे हो सकती है? जिससे सबकी उत्पत्ति, पालन और संहार-कार्य होते हैं तथा जो किसी दूसरेसे उत्पन्न न होकर सदा विद्यमान रहता है, वही भगवान् है—‘**मूले मूलाभावादमूलं मूलम्**’ (सांख्यदर्शन)।

२. सृष्टिरचना भगवान्का एक खेल है। अनन्त महासागरके वक्षःस्थलपर युग-युगसे जो अनन्त तरंग-मालिकाएँ उठती और विलीन होती रहती हैं, उनमें वायुदेवके विभ्रम-विलासके सिवा और क्या कारण हो सकता है? इन उत्ताल तरंगोंके उत्थान और लयका क्या उद्देश्य है? कौन कह सकता है? यदि कहीं भगवान्की वह लीला किस कामकी, जिसमें असंख्य जीव कष्ट भोगते रहते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य अपने ही काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणोंसे प्रेरित होकर जो शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके फलस्वरूप सुख-दुःख भोगता है। जो इन दुर्गुणोंसे बचकर राग-द्वेष, दर्प-अहंकार आदिसे दूर रहता है, वह दुःखका भागी नहीं होता। दुःख भी अज्ञानवश ही है, वास्तवमें नहीं। शेष प्रभूकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ४।४० बजेतक	मंगल	मूल दिनमें ७।४५ बजेतक	२१ जून	सायन कर्कराशि का सूर्य दिनमें ११।४२ बजे, मूल दिनमें ७।४५ बजेतक।
द्वितीया " ४।४६ बजेतक	बुध	पू० षा० " ८।४३ बजेतक	२२ "	भद्रा रात्रिशेष ४।३४ बजेसे, मकरराशि दिनमें २।५० बजेसे, आर्द्रा-नक्षत्र का सूर्य प्रातः ६।२१ बजे।
तृतीया " ४।२२ बजेतक	गुरु	उ० षा० " ९।११ बजेतक	२३ "	भद्रा दिनमें ४।२२ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।७ बजे।
चतुर्थी " ३।२८ बजेतक	शुक्र	श्रवण " ९।१० बजेतक	२४ "	कुम्भराशि रात्रिमें ८।५५ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ८।५५ बजे।
पंचमी " २।९ बजेतक	शनि	धनिष्ठा " ८।४१ बजेतक	२५ "	x x x x
षष्ठी " १२।२७ बजेतक	रवि	शतभिषा " ७।५३ बजेतक	२६ "	भद्रा दिन १२।२७ से रात्रिमें ११।२७ बजेतक, मीनराशि रात्रि १।१ बजेसे।
सप्तमी " १०।२६ बजेतक	सोम	पू० भा० प्रातः ६।४३ बजेतक	२७ "	कालाष्टमी।
अष्टमी " ८।११ बजेतक	मंगल	उ० भा० प्रातः ५।१९ बजेतक	२८ "	मेघराशि रात्रिमें ३।४५ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ३।४५ बजे।
नवमी प्रातः ५।४७ बजेतक	बुध	रेवती रात्रिशेष ३।४५ बजेतक	२९ "	मूल प्रातः ५।१९ बजेसे।
दशमी रात्रिमें ३।१९ बजेतक	गुरु	अश्विनी रात्रिमें २।५ बजेतक	२९ "	भद्रा दिनमें ४।३३ बजेसे रात्रिमें ३।१९ बजेतक, मूल रात्रिमें २।५ बजेतक।
एकादशी " १२।४९ बजेतक	शुक्र	भरणी " १२।२५ बजेतक	३० "	योगिनी एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " १०।२६ बजेतक	शनि	कृत्तिका " १०।५० बजेतक	१ जुलाई	वृषराशि प्रातः ६।१ बजेसे।
त्रयोदशी " ८।१२ बजेतक	रवि	रोहिणी " ९।२६ बजेतक	२ "	भद्रा रात्रिमें ८।१२ बजेसे, शनिप्रदोषव्रत।
चतुर्दशी सायं ६।११ बजेतक	सोम	मृगशिरा " ८।१४ बजेतक	३ "	भद्रा दिनमें ७।१२ बजेतक, मिथुनराशि दिनमें ८।५० बजेसे।
अमावस्या दिनमें ४।२९ बजेतक	मंगल	आर्द्रा " ७।२४ बजेतक	४ "	सोमवती अमावस्या।

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षाऋतु, आषाढ़ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।१० बजेतक	मंगल	पुनर्वसु सायं ६।५३ बजेतक	५ जुलाई	कर्कराशि दिनमें १।१ बजेसे।
द्वितीया " २।१५ बजेतक	बुध	पुष्य " ६।४८ बजेतक	६ "	श्रीजगदीश रथयात्रा, पुनर्वसुका सूर्य दिनमें ७।५६ बजे, मूल सायं ६।४८ बजेसे।
तृतीया " १।५१ बजेतक	गुरु	आश्लेषा रात्रिमें ७।१३ बजेतक	७ "	भद्रा रात्रिमें १।५३ बजेसे, सिंहराशि रात्रिमें ७।१३ बजेसे।
चतुर्थी " १।५६ बजेतक	शुक्र	मघा " ८।९ बजेतक	८ "	भद्रा दिनमें १।५६ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल रात्रिमें ८।९ बजेतक।
पंचमी " २।३४ बजेतक	शनि	पू० फा० " ९।३४ बजेतक	९ "	कन्याराशि रात्रिमें ४।२ बजेसे।
षष्ठी " ३।३८ बजेतक	रवि	उ० फा० " ११।२६ बजेतक	१० "	स्कन्दषष्ठी।
सप्तमी सायं ५।१० बजेतक	सोम	हस्त " १।४२ बजेतक	११ "	भद्रा सायं ५।१० बजेसे।
अष्टमी " ६।५८ बजेतक	मंगल	चित्रा रात्रिशेष ४।१२ बजेतक	१२ "	भद्रा प्रातः ६।४ बजेतक, तुलाराशि दिनमें २।५७ बजेसे।
नवमी रात्रिमें ८।५८ बजेतक	बुध	स्वाती अहोरात्र	१३ "	x x x x
दशमी " १०।५९ बजेतक	गुरु	स्वाती प्रातः ६।५० बजेतक	१४ "	वृश्चिकराशि रात्रिमें २।४५ बजेसे।
एकादशी " १२।५० बजेतक	शुक्र	विशाखा दिनमें ९।२४ बजेतक	१५ "	भद्रा दिनमें ११।५५ बजेसे रात्रिमें १२।५० बजेतक, श्रीहरिशयनी एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " २।२२ बजेतक	शनि	अनुराधा " ११।४५ बजेतक	१६ "	चातुर्मास्यव्रत प्रारम्भ, कर्कसंक्रान्ति रात्रिमें ९।५ बजे, वर्षाऋतु एवं दक्षिणायन प्रारम्भ, मूल दिनमें ११।४५ बजेसे।
त्रयोदशी " ३।३० बजेतक	रवि	ज्येष्ठा " १।४६ बजेतक	१७ "	प्रदोषव्रत, धनुराशि दिनमें १।४६ बजेसे।
चतुर्दशी रात्रिशेष ४।१० बजेतक	सोम	मूल " ३।२० बजेतक	१८ "	मूल दिनमें ३।२० बजेतक, भद्रा रात्रिशेष ४।१० बजेसे।
पूर्णिमा " ४।१८ बजेतक	मंगल	पू० षा० " ४।२५ बजेतक	१९ "	भद्रा दिनमें ४।१४ बजेतक, गुरुपूर्णिमा, मकरराशि रात्रिमें १०।३४ बजेसे।

कृपानुभूति

(१)

जब माँने मुझे मौतके मुँहसे बचाया

करुणामयी माँकी कृपा-वर्षा तो सभी प्राणियोंपर समान-रूपसे हो रही है, परंतु उनकी कृपाका अनुभव किसी विरले भाग्यशालीको ही हो पाता है। मुझे विगत वर्षोंमें माँकी कृपाका अनेक बार अनुभव हुआ है। इनमेंसे एक घटना इस प्रकार है—

बात लगभग चालीस वर्ष पुरानी है। जबलपुरकी विजयादशमी प्रसिद्ध है। मेरी ननद एवं सासजीकी इच्छा विजयादशमीका उत्सव देखनेकी हुई। उन लोगोंको साथ लेकर मैं जबलपुर अपने माँके यहाँ गयी। हमने विजया-दशमीके दिन दुर्गा-प्रतिमाओंकी भव्य शोभा-यात्राका दर्शन किया और विचार हुआ कि कल ग्वारीघाट जाकर नर्मदा-स्नान करनेके पश्चात् दुर्गा-विसर्जनका दृश्य देखा जायगा।

हम अगले दिन प्रातः ८ बजे घरसे रिक्शा करके ग्वारीघाटके लिये चल पड़ीं। मार्गमें गलगला चौकपर स्थित प्रसिद्ध देवी-मन्दिर मिला। हमलोगोंने वहाँ भगवती दुर्गाका दर्शन किया और मन-ही-मन माँसे निवेदन किया कि ‘माँ! हम सब लौटते समय आपकी आरतीमें सम्मिलित होंगी।’

तत्पश्चात् पुनः हम सब वहाँसे रिक्शाद्वारा ग्वारीघाटके लिये चल पड़ीं। रिक्शेकी सीटपर मेरी सास तथा ननद बैठी थीं एवं पटियेपर मेरे साथ मेरा भाँजा बैठा था। बादशाह हलवाईके मन्दिरके पासवाले मोड़पर नीचेकी ओरसे सहसा एक ट्रक आया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह हमारे रिक्शेको कुचल देगा। अचानक मेरे मुँहसे निकला—‘माँ! हमारी रक्षा करो।’ ट्रककी जोरदार टक्कर हुई और रिक्शेके एक चक्केपर ट्रक चढ़कर रुक गया, जैसे किसी अज्ञात शक्तिने ट्रकको रोक दिया हो। रिक्शाका चक्का चकनाचूर हो गया, परंतु हम चारों एवं रिक्शाचालक दूसरी ओर गिरे और सभी सुरक्षित बच गये। हमने हृदयसे भगवती जगदम्बाके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम किया। सकुशल हम सब ग्वारीघाटपर प्रतिमा-विसर्जनके मनोहारी दृश्यको देखकर वापसी यात्रामें गया।

हुई। तदुपरान्त अपने निवास-स्थानपर आ गयीं। सच्चे हृदयसे पुकारनेपर माँ मौतके मुखसे अवश्य बचा लेती हैं। भगवतीकी असीम कृपाका स्मरणकर आज भी मेरा हृदय गदगद हो जाता है।—श्रीमती प्रभा वैद्य

(२)

ईश्वरकृपासे जीवन-दान

बात जून १९८५ ई० की है। मेरी माताजीके ट्यूमरका ऑपरेशन हुआ था। उन्हें कैंसर हो गया था। जब ऑपरेशनके बाद उन्हें घर लाया गया तो उनकी स्थिति निरन्तर बिगड़ती ही जा रही थी। डॉक्टरोंने भी अत्यधिक प्रयास किया, किंतु स्वास्थ्यमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद माताजीकी हालत बहुत गम्भीर हो गयी। डॉक्टरोंने हमें बता दिया कि माताजी अब अधिक-से-अधिक एक महीना बचेंगी। हम सभी बहुत निराश हो गये; क्योंकि घरमें उनके अतिरिक्त और कोई घरकी सँभाल करनेवाला न था। पिताजीका पहले ही स्वर्गवास हो चुका था।

ऐसी विषम परिस्थितिमें मेरी बुआने मुझसे कहा कि मैं प्रतिदिन हनुमान्जीके मन्दिरमें जल चढ़ाने जाया करूँ और चरणामृत लाकर माँको पिला दिया करूँ। अतः मैं उसी दिनसे हनुमान्जीके मन्दिरमें जल चढ़ाने जाता और दुखी हृदयसे माँकी प्राण-रक्षाके लिये हनुमान्जीसे प्रार्थना करता तथा चरणामृत माँको पिलाया करता। मेरा छोटा भाई भी प्रतिदिन माँके समीप बैठकर रामचरितमानसका नियमित पाठ करता। हम अपनेको पूर्ण असहाय अनुभव करते थे। भगवान्से विनती करनेके अतिरिक्त माँके स्वास्थ्य-लाभका और कोई सहारा नहीं था। करुणावरुणालय सर्वेश्वर ही एकमात्र आधार थे हमारे। सर्वान्तर्यामी प्रभुने हमारे मनकी भावनाको जान लिया तथा हमारी विनती भी स्वीकार कर ली। धीरे-धीरे माताजीके स्वास्थ्यमें सुधार होने लगा और कुछ दिनों बाद वे पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। आज भगवान्की कृपासे मेरी माताजी पूर्णतः स्वस्थ हैं। आज भी भगवान्का ध्यान आते ही मन श्रद्धासे भरकर उनके चरणोंमें झुक

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मुझे भी वही परमात्मा दे देगा

यद्यपि कराल कलिकाल और उपभोगवादी संस्कृतिके प्रभावसे जीवन-मूल्य, नैतिकता, ईमानदारी, सच्चरित्रता, ईश्वर-विश्वास आदि सदगुणोंका समाजमें तेजीसे हास होता जा रहा है; पर जीवनमें कभी-कभी ऐसी भी घटनाएँ घट जाती हैं, जिनसे जिन्दगीमें एक मुसकान आ जाती है और यह कहना पड़ता है कि 'नहीं, इन दैवी गुणोंका अभी धरतीसे लोप नहीं हुआ है,' यद्यपि ऐसी घटनाएँ 'जनु मरुभूमि देवधुनि धारा' की भाँति अल्प ही होती हैं। ऐसी ही एक घटना गत वर्ष मेरे भी साथ घटी थी। हुआ यह कि मैं किसी कार्यसे रायबरेली शहर गया था, घर वापस लौटनेपर देखा कि जेबमें पर्स तो है ही नहीं। अब मेरे तो होश उड़ गये। चिन्ताका विषय यह था कि उस पर्समें बाइस हजार नकद रुपयोंके साथ-साथ दो बैंकोंके ए०टी०एम० कार्ड, पैन कार्ड, आधार कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस तथा अन्य जरूरी कागजात भी थे। इनका दुरुपयोग भी हो सकता था। पर्स कहाँ गिरा होगा—इसी उधेड़बुनमें मैं परेशान था। मेरी परेशानीकी यह स्थिति लगभग दो घण्टेतक बनी रही।

अचानक दो घण्टे बाद एक फोन आया। मेरेद्वारा काल-रिसीव करनेपर उधरसे आवाज आयी, 'क्या आप माधवेश सिंह बोल रहे हैं?' मैंने कहा—हाँ, भाई! बोल रहा हूँ। उधरसे पूछा गया, 'क्या आपका कुछ खो गया है?' मैंने कहा कि लगभग दो घण्टे पहले मैं घण्टाघरकी ओर गया था, उधर ही कहीं मेरा पर्स गिर गया, फिर मैंने पर्समें रखी सामग्रीके विषयमें बताया। मैंने फोन करनेवालेका परिचय जानना चाहा तो उसने कहा कि मैं यहाँ खोवामण्डीमें एक साइकिल स्टोरपर बैठा हूँ, आप आ जाइये; आपका पर्स मिल जायगा।

मैं बताये हुए स्थानपर पहुँचा तो वे फोन करनेवाले सज्जन मुझे पर्स लिये मिले। उन्होंने कहा कि आप अपना यह पर्स देख लीजिये कि इसमें सारा सामान है या नहीं। मैंने देखा तो उसमें रुपयोंसहित सारे कागजात

यथावत् रखे थे। मैंने प्रसन्नतापूर्वक कृतज्ञ हृदयसे उन सज्जनका आभार व्यक्त करते हुए उसमेंसे दो हजार रुपये उन्हें देने चाहे तो उन सज्जनने कहा—भाई साहब! यह पर्स मुझे नहीं मिला, यह सामनेवाली दूकानपर काम करनेवाले पल्लेदारको मिला था, उसने मुझे लाकर दिया और कहा कि साहब! इसमें रुपयोंके अलावा जरूरी कागज भी रखे हैं, जिसका हो, किसी प्रकार उसतक खबर कर दीजिये, मैं इसमें लिखा पढ़ भी नहीं पाऊँगा।

मैंने सामनेकी दूकानसे उस पल्लेदारको बुलवाया और धन्यवाद देते हुए उसे दो हजार रुपये यह कहकर देने लगा कि यह तुम रख लो, यह तुम्हारी ईमानदारीका इनाम है। उसने कहा—साहब! आपका सामान आपको मिल गया, यही मेरे लिये सबसे बड़ा इनाम है, मुझे पैसोंकी जरूरत नहीं है। मैंने पुनः उससे आग्रह किया कि भाई! मेरे संतोषके लिये ही ले लीजिये। इसपर उसने कहा—साहब! इतने रुपये आपको कौन देता है? मैंने कहा—परमात्मा देता है। इसपर उसने कहा—तो फिर वही परमात्मा मुझे भी दे देगा।

मैं उसके इस उत्तरसे अवाक् रह गया कि यह व्यक्ति इतनी आर्थिक विपन्नताकी स्थितिमें भी सदगुणों और मानवीय मूल्योंसे कितना सम्पन्न है। उसने आगे कहा—साहब! रही बात आपके संतोषकी, तो जब आप परमात्मासे अपने लिये प्रार्थना करना तो मेरे लिये भी इतनी प्रार्थना कर लेना कि मेरी भुजाओंमें बल और सीनेमें ईमानदारी बनी रहे।—माधवेश सिंह

(२)

'अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्'

[आँखों देखी घटना]

आजसे प्रायः पचीस साल पहलेकी बात है। तब मैं अपने घरसे प्रायः पचास कि०मी० दूर स्थित हावाजान उच्चतर माध्यमिक विद्यालयमें अध्यापन करता था। एक कमरा किरायेपर लेकर वहीं रहता था। घरके मालिक कार्की महोदय भी इसी विद्यालयके शिक्षक थे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

एक दिन शनिवारको जब मैं विद्यालयसे कमरेको वापस आया और घर आनेकी बात सोच रहा था कि कार्की सरके बड़े भाई लोकनाथ कार्की, जो अध्यापन ही करते थे, ने मेरे पास आकर हँसते-हँसते थोड़ा-सा मजाक करते हुए कहा—‘मास्टरजी! ठण्डका मौसम है। ठण्डे पानीमें हाथ डुबाते हुए खाना बनाना कठिन काम है ना? एक दिन ही क्यों न हो, आराम तो कीजिये। आज चलिये शिमलुगुडी जायँ। आपको अपने बड़े भाईसे न मिले शायद बहुत दिन हुए, मिल सकेंगे।’ मैंने भी तुरन्त मान लिया कि बात सही है। तैयार होकर हम दोनों साइकिलसे शिमलुगुडीको चले। शिमलुगुडी पन्द्रह कि०मी० दूरीपर था। बीचमें रेललाइनका क्रॉसिंग पड़ता था। रेल-लाइन पार होकर सड़कके किनारेपर स्थित एक पानकी दूकानपर पान खानेकी इच्छा हुई। दोनों रुके, उसी वक्त ट्रेन गुवाहाटीसे रंगापाड़ा जंक्शन होकर लक्षिमपुर शहरकी ओर आती हुई दिखायी पड़ी। मैं ट्रेनको देखनेके लिये उत्सुक हुआ। उत्सुक इसलिये हुआ कि ट्रेनमें दूर-दूरके पैसेंजर-रूपी नरनारायणका दर्शन घर बैठे ही कर सकूँ। अकस्मात् नजर सामने रेल लाइनपर पड़ी। देखा कि कुछ दूरीपर एक बकरी सद्योजात अपने दो बच्चोंके साथमें लाइनके बीच इधर-से-उधर कर रही है, ट्रेन जिधरसे आ रही थी, उधर ही सिर करके। मन चाहता था कि उन सबको लाइनसे बाहर कर दूँ, पर ट्रेन इतने नजदीक आ पहुँची थी कि इतना समय था नहीं। आखिर हम दोनों ‘राम राम’ कहने लगे। शनैः-शनैः बकरी और एक बच्चेको लाइनसे बाहर आते देखकर अच्छा लगा, पर दूसरा बच्चा तो तीव्रगतिशील निकटवर्ती ट्रेनकी ओर सिर उठाकर देखने लगा। ट्रेन आयी और उसने बच्चेको धक्का मार दिया। बच्चा करीब पन्द्रह फीटकी दूरीपर जा गिरा किनारेपर। हम आँखें बन्द करनेके सिवाय और कर ही क्या सकते थे। ट्रेनके चले जानेपर हम वहाँ पहुँचे। देखा कि वह सकुशल जमीनपर खड़ा है, कहीं चोटतक नहीं। हमने उसे उसकी माँके पास पहुँचा दिया। वह माँका दूध पीने लगा। हमें आश्चर्य हुआ और ‘अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्’ यह

कथन पूर्णतया सत्य प्रतीत हुआ कि जिसकी रखवाली ऊपरवाला करना चाहता है, उसे कोई नहीं मार सकता। बकरीके नन्हे-से बच्चेको ट्रेनकी टक्करसे ऊपरवालेकी कृपाने ही बचाया था।—उदयनारायण गौतम

(३)

एक नयी सुबह

हमारे जीवनमें कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जो दुःखदायी होते हुए भी हमारी अन्तरात्माको चेतनाको जाग्रत्कर हमारे जीवनकी धाराको बदल देती हैं। ऐसा ही एक सच्चा वृत्तान्त मुझे मेरे मित्रने बताया, जो उसके जवानीके दिनोंमें घटित हुआ था, जिसने मुझे चिन्तनके लिये मजबूर कर दिया।

उसने बताया कि यह बात आजसे लगभग तीस वर्ष पुरानी है, मैं एक कम्पनीमें उच्च पदपर कार्यरत था और अपनी पत्नी एवं पुत्रके साथ सुखमय जीवन बिता रहा था। एक दिन मेरा एक मित्र कार्यालयसे निकलनेके बाद मेरे ना करनेपर भी मुझे एक बारमें ले गया। वहाँपर लोग नृत्यके साथ-साथ मदिरापान भी कर रहे थे। वहाँपर बारबालाएँ अपने नृत्य एवं भाव-भंगिमाओंसे आगंतुकोंका मन मोह रही थीं। इन्हींमेंसे एक बाला मेरे समीप आकर बैठ गयी। उसके आकर्षक व्यक्तित्व एवं मीठी वाणीने मुझे सहज ही अपनी ओर खींच लिया। अब मैं प्रतिदिन उससे मिलनेके लिये बारमें जाने लगा और रुपये भी लुटाने लगा। इसका नतीजा हुआ, घरमें धनकी कमीसे आपसी-कलह। एक दिन पत्नीको सारी बातोंके पता चलनेपर वह मुझे छोड़कर, पुत्रके साथ मायके चली गयी।

अब मैं और भी ज्यादा स्वच्छन्द हो गया था और दिन-रात शराबके नशेमें डूबकर बारमें समय बिताने लगा, एक दिन धनके अभावके कारण उस बालाके द्वारा चाहे गये उपहारको मैं नहीं दे पाया तो उसने अपना असली रूप दिखाते हुए मुझसे कहा—‘अब तुम यहाँपर आने और मेरेसे बात करनेके काबिल नहीं रहे, यहाँपर सम्मान उसीका होता है, जो धनवान् होता है, धनविहीन एवं भिखारियोंके लिये यहाँ कोई जगह नहीं है। तुम क्या थे, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है, तुम आज क्या

मनन करने योग्य

‘दयालु दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं’

महात्मा शिवरामकिंकरके सम्बन्धमें पढ़ा था कि एक बार डाकिया तारका मनीआर्डर लेकर उनके पास पहुँचा। तारमें लिखा था कि ‘भगवान् शिवने स्वप्नमें मुझसे कहा है कि अमुक स्थानपर मेरा भक्त शिवरामकिंकर तीन दिनसे भूखा है! उन्हींके लिये मैं तारसे यह रुपया भेज रहा हूँ। इस नामके कोई सज्जन हों तो उन्हें खोजकर उनके चरणोंमें यह तुच्छ भेंट पहुँचा दी जाय!’

कहते हैं कि एक बार शिवाजी महाराजके मनमें यह भाव आ गया कि मैं इतने व्यक्तियोंको खिलाता हूँ। अचानक उनके गुरुदेवने वहाँ प्रकट हो एक भारी पत्थर तुड़वाया। देखा, उसके भीतर थोड़ी-सी तरीके बीचमें एक मेढक बैठा है।

शिवाजी लाजसे कटकर रह गये। जब उन्होंने पूछा—‘इस मेढकको भोजन कौन भेजता है?’

श्री म..... ‘आकाशवाणी’ में काम करते हैं। विवाहकी आयुवाली एक बहनकी चिन्ता उन्हें ही नहीं, सभी घरवालोंको खाये जा रही है। जमीन है, पर उसपर कई हजारका कर्ज लदा है। नौकरीसे अपनी गुजर किसी कदर चल जाय, इतना ही बहुत!

पारसाल बहनकी शादी एक जगह तय हो गयी। समयसे टीकेके लिये रकम एकत्र न हो सकी और वह सम्बन्ध टूट गया!

पैसेकी दुनियामें बिना पैसेवालोंको पूछता ही कौन है। गरीबोंकी बेबसीपर किसे तरस आता है। दहेजकी कौड़ी-कौड़ीको दाँतसे पकड़नेवाले लोगोंके हृदयमें दया कहाँ।

दीनबन्धु बिन दीनकी को ‘रहीम’ सुधि लेय।
अभी-अभी उस दिन श्री म.....को तार मिला—

‘तुम्हारी बहनका फलदान चढ़ गया है। तुम छुट्टी

लेकर फौरन आ जाओ। सभी घरवालोंको लेकर तुम्हें काशी जाना है। वहीं विवाह होगा। कन्यादान तुम्हें ही करना है!’

छुट्टीके लिये बड़ी दौड़-धूप की। अफसरोंने इनकार कर दिया। पर जिसकी अर्जी मालिकके दरबारमें मंजूर हो गयी, उसकी अर्जी यहाँपर मंजूर हुए बिना कैसे रह सकती है।

‘जरा देरको सोचिये कि आपकी बेटीकी शादी हो तो क्या आप ऐसे मौकेपर रुक जायँगे?’—बाल-बच्चेदार अफसर पिघल ही तो गया म.....के मुँहसे यह दलील सुनकर!

विवाह सकुशल सम्पन्न हो गया। लड़का स्वस्थ, सुशील, पढ़ता भी है, कुछ पैदा भी करता है।

दो हजार फलदानमें लगा और एक हजार अन्य सब फुटकर खर्चोंमें!

पर, यह तीन हजार रुपया आ कहाँसे टपका? श्री म.....से एक सज्जनका मुकदमा चल रहा है। पानीके प्रश्नको लेकर फौजदारी हो चुकी है.....

उनके बेटेने एक दिन उनसे कहा—‘बाबू म.....के पिताके आपपर बड़े उपकार हैं। उन्होंने आपके प्राणोंकी भी रक्षा की है। उनसे और आपसे बड़ी दोस्ती थी। उनकी बेटीकी शादी पैसेके अभावमें रुकी रहे, यह तो ठीक नहीं। यह तो इज्जतका सवाल है। पिताके मित्र होनेके नाते आपकी इज्जतका भी सवाल है। पानीका झगड़ा अपनी जगह है, उसे तो इसमें बाधक नहीं बनना चाहिये। इस मौकेपर तो आपको म.....की मदद करनी ही चाहिये!.....’

बेटेके मुँहसे भगवान् बोले।
पिताने खटसे तीन हजार रुपये निकालकर दे दिये!

गीताप्रेससे प्रकाशित बाल-साहित्य पढ़ें और पढ़ावें

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
— बालकोपयोगी पुस्तकें रंगीन चित्रोंके साथ —			164	भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा	२०
1690	बालकके गुण	ग्रन्थाकार ३५	165	मानवताका पुजारी	२०
1689	आओ बच्चों तुम्हें बतायें	” २५	166	परोपकार और सच्चाईका फल	२०
1692	बालककी दिनचर्या	” २५	510	असीम नीचता और असीम साधुता	२०
1693	बालकोंकी सीख	” २५	— रोचक कहानियाँ —		
1694	बालकके आचरण	” २५	1669	पौराणिक कहानियाँ	१५
1691	बालकोंकी बातें	पुस्तकाकार १५	1624	पौराणिक कथाएँ	१५
1437	वीर बालक	” २०	1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ	२५
1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक	” १५	1093	आदर्श कहानियाँ	१५
1450	सच्चे और ईमानदार बालक	” १५	137	उपयोगी कहानियाँ	१५
1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	” १५	147	चोखी कहानियाँ	१०
1448	वीर बालिकाएँ	” १५	122	एक लोटा पानी	२०
— सत्य घटनाओंपर आधारित कहानियाँ —			1308	प्रेरक कहानियाँ	१०
159	आदर्श उपकार	२०	680	उपदेशप्रद कहानियाँ	१५
160	कलेजेके अक्षर	२०	1688	तीस रोचक कथाएँ	१५
161	हृदयकी आदर्श विशालता	२०	1782	प्रेरणाप्रद कथाएँ	२०
162	उपकारका बदला	२०	283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	१०
163	आदर्श मानव हृदय	२०	1938	गीता माहात्म्यकी कहानियाँ	१०

‘गीताप्रेस’ गोरखपुरकी निजी दूकानें

इन्दौर-	जी० 5, श्रीवर्धन, 4 आर. एन. टी. मार्ग
ऋषिकेश-	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम
कटक-	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी
कानपुर-	24/55, बिरहाना रोड
कोयम्बटूर-	गीताप्रेस मेशन, 8/1 एम, रैसकोर्स
कोलकाता-	गोबिन्दभवन; 151, महात्मा गाँधी रोड
गोरखपुर-	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस
चेन्नई-	इलेक्ट्रो हाउस नं० 23, रामनाथन स्ट्रीट किल पोक
जलगाँव-	7, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास
दिल्ली-	2609, नयी सड़क
नागपुर-	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड
पटना-	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने
बेंगलोर-	7/3, सेकेण्ड क्रॉस, लालबाग रोड
भीलवाड़ा-	जी 7, आकार टावर, सी ब्लॉक, गान्धीनगर
मुम्बई-	282, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)
राँची-	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर
रायपुर-	मिन्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक (छत्तीसगढ़)
वाराणसी-	59/9, नीचीबाग
सूरत-	वैभव एपार्टमेन्ट, भटार रोड
हरिद्वार-	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार
हैदराबाद-	41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार

इन स्टेशन-स्टालोंपर कल्याणके ग्राहक बन सकते हैं

दिल्ली (प्लेटफार्म नं० 5-6); नयी दिल्ली (नं० 16); हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली] (नं० 4-5); कोटा [राजस्थान] (नं० 1); बीकानेर (नं० 1); गोरखपुर (नं० 1); गोण्डा (नं० 1); कानपुर (नं० 1); लखनऊ [एन० ई० रेलवे]; वाराणसी (नं० 4-5); मुगलसराय (नं० 3-4); हरिद्वार (नं० 1); पटना (मुख्य प्रवेशद्वार); राँची (नं० 1); धनबाद (नं० 2-3); मुजफ्फरपुर (नं० 1); समस्तीपुर (नं० 2); छपरा (नं० 1); सीवान (नं० 1); हावड़ा (नं० 5 तथा 18 दोनोंपर); कोलकाता (नं० 1); सियालदा मेन (नं० 8); आसनसोल (नं० 5); कटक (नं० 1); भुवनेश्वर (नं० 1); अहमदाबाद (नं० 2-3); राजकोट (नं० 1); जामनगर (नं० 1); भरुच (नं० 4-5); वडोदरा (नं० 4-5); इन्दौर (नं० 5); जबलपुर (नं० 6); औरंगाबाद [महाराष्ट्र] (नं० 1); सिकन्दराबाद [आ० प्र०] (नं० 1); विजयवाड़ा (नं० 6); गुवाहाटी (नं० 1); खड़गपुर (नं० 1-2); रायपुर [छत्तीसगढ़] (नं० 1); बेंगलुरु (नं० 1); यशवन्तपुर (नं० 6); हुबली (नं० 1-2); श्री सत्यसाई प्रशान्ति निलयम् [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० 1)।

फुटकर पुस्तक-दूकानें— चूरू-ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क, ऋषिकेश-मुनिकी रेती; बेरहामपुर-म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, के० एन० रोड, नडियाड (गुजरात) संतराम मन्दिर।

उपर्युक्त सभी गीताप्रेस गोरखपुरकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालोंपर ‘कल्याण’ का शुल्क जमा कराके रसीद प्राप्त की जा सकती है।



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

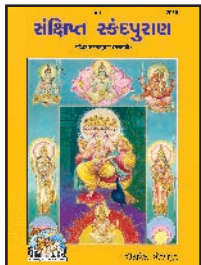
FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार



नवीन प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य—संक्षिप्त स्कन्दपुराण (कोड 2036) गुजराती—

यह पुराण कलेवरकी दृष्टिसे सबसे बड़ा है तथा इसमें लौकिक और पारलौकिक ज्ञानके अनन्त उपदेश भरे हैं। इसमें धर्म, सदाचार, योग, ज्ञान तथा भक्तिके सुन्दर विवेचनके साथ अनेकों साधु-माहात्माओंके सुन्दर चरित्र पिरोये गये हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कार्तिकेय जन्म, तारकासुर-वध आदिका मनोहर वर्णन है। मूल्य ₹३५०

पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तक अब उपलब्ध

पातञ्जलयोग-प्रदीप (कोड 47)—श्रद्धेय श्रीओमानन्द महाराजद्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें पातञ्जलयोग-सूत्रोंकी व्याख्या तत्त्ववैशारदी, भोजवृत्ति तथा योगवार्तिकके अनुसार विस्तृत रूपसे की गयी है। इसमें उपनिषदों तथा भारतीय दर्शनोंके विभिन्न तत्त्वोंकी सुन्दर समालोचना है। इसकी व्याख्या सरल तथा सुगम है। भूमिकारूपमें षड्दर्शन समन्वय तथा तत्त्वविश्लेषण प्रणालीसे यह ग्रन्थ और भी उपयोगी हो गया है। यह योग-दर्शनके जिज्ञासुओंके लिये नित्य पठनीय है। सचित्र, सजिल्द। मूल्य ₹१७०

कूर्मपुराण-सानुवाद (कोड 1131)—इस पुराणमें भगवान् के कूर्मावतारकी कथा, सृष्टि-वर्णन, वर्ण, आश्रम और उनके कर्तव्योंका वर्णन, युग धर्म, मोक्षके साधन, २८ व्यासोंकी कथाएँ आदि विविध विषयोंका सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। मूल्य ₹१४०

मत्स्यमहापुराण-सानुवाद (कोड 557)—इस पुराणमें मत्स्यावतारकी कथाके साथ सृष्टि वर्णन, मन्वन्तर तथा पितृवंशवर्णन, ययाति-चरित्र, राजनीति, यात्राकाल, शकुन-शास्त्र आदि अनेक उपयोगी विषयोंका संग्रह है। मूल्य ₹२७०

उपनिषद्-अङ्क (कोड 659)—इसमें नौ प्रमुख उपनिषदों—(ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर—) का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित संकलन है। इसके अतिरिक्त इसमें ४५ उपनिषदोंका हिन्दी-भाषान्तर, महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर टिप्पणी तथा प्रायः सभी उपनिषदोंका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। मूल्य ₹२००

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण केवल भाषानुवाद (कोड 77)—सचित्र, मूल्य ₹२८०

महाभारत (सटीक) (कोड 32)—प्रथम खण्ड, आदिपर्वसे सभापर्वतक सचित्र, मूल्य ₹३२५
(कोड 33) द्वितीय खण्ड, (कोड 36) पंचम खण्ड प्रकाशनकी प्रक्रियामें (कोड 34, 35, 37) की सीमित प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

श्रीरामचरितमानस, बृहदाकार [केवल मूल पाठ] (कोड 1436)—इसमें पाठ-विधिके साथ नवाह्न और मास परायणके विश्रामस्थान दी गयी है। मूल्य ₹२५०

खुल गया है—गोंदिया (महाराष्ट्र) रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म नं० १ पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल।